भारत दुर्दशा

82
57B

विश्व विद्यालय प्रकाशन
गोरखपुर

UNIVERSAL LIBRARY

OU_186239

UNIVERSAL LIBRARY

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

कृत

भारतदुर्दशा

संपादक

लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

हिन्दी विभाग, यूनिवर्सिटी, इलाहाबाद

विश्वविद्यालय प्रकाशन

मोतीलाल मोदी एंड संस

गोरखपुर

विश्वविद्यालय प्रकाशन

प्रकाशक,

पुरुषोत्तमदास मोदी, एम० ए०

मोतीलाल मोदी एंड संस

गोरखपुर

प्रथम संस्करण ३०००

जनवरी–१९५३

मूल्य–डेढ़ रुपया

मुद्रक,

पं० पृथ्वीनाथ भार्गव

भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट, बनारस

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
भूमिका	१–१९
भारतवर्ष में नाट्य-कला	१
हिन्दी नाट्य-साहित्य का इतिहास और भारतेन्दु की नाट्य-रचनाएँ	२
भारतेन्दु की संक्षिप्त जीवनी	७
भारत दुर्दशा : समीक्षा	८
भारत दुर्दशा	२१–८९
टिप्पणी	५१–८४

भूमिका

भारतवर्ष में नाट्य-कला

जिस प्रकार एक व्यक्ति के जीवन में मनोरंजन का महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है, उसी प्रकार प्रत्येक राष्ट्र के पास अपनी राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक परंपराओं के अनुसार मनोरंजन के साधन होते हैं। नाटक इसी प्रकार के अनेक साधनों में से एक साधन है। भारतवर्ष में काव्य के दो भेद माने गए हैं—श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य। श्रव्य काव्य का आनन्द सुन कर उठाया जाता है और दृश्य काव्य का आँखों द्वारा। आँखों देखी बातों का, स्वभावतः, हृदय पर अधिक स्थायी प्रभाव पड़ता है। इसी दृश्य काव्य के अंतर्गत नाटक की गणना की जाती है। संस्कृत में दृश्य काव्य को ही रूपक के नाम से पुकारा गया है। रूपकों के साथ-साथ उपरूपक भी माने गए हैं। रूपक के दस भेद हैं:—**नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन. डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, अंक** और **ईहामृग**। उपरूपक अठारह प्रकार के माने गए हैं:—नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी सट्टक, नाट्य-रासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेङ्खण, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणिका, हल्लीश और भाणिका। संस्कृत साहित्य-शास्त्र के प्रणेताओं ने इन विविध रूपकों और उपरूपकों के लक्षण निर्धारित किए हैं। वस्तु-संगठन, नायक और रस—प्राचीन भारतीय नाट्य-शास्त्र के अनुसार ये तीन तत्व नाटक के प्रधान अंग माने गए हैं। इन नियमों का पालन करते हुए तीसरी-चौथी शताब्दी पूर्वेसा से अनेक नाटककारों ने अपनी नाट्य-कृतियाँ प्रस्तुत कीं। इसी परंपरा में भास, कालिदास, भवभूति, शूद्रक, हर्ष, विशाखदत्त, राजशेखर आदि अनेक विश्व-विख्यात नाटककार हुए। इस प्रकार आज से लगभग दो सहस्र वर्ष पूर्व भारतवर्ष में नाट्य-कला का जन्म और विकास हो चुका था। अन्य देशों से बहुत पहले यहाँ वह अपनी पूर्ण उन्नतावस्था को पहुँच गई थी।

हिन्दी नाट्य-साहित्य का इतिहास और भारतेन्दु की नाट्य-रचनाएँ

ईसा की सातवीं शताब्दी में हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद भारतीय राजनीतिक जीवन छिन्न-भिन्न और अराजकतापूर्ण हो गया था और शीघ्र ही बढ़ते हुए इस्लाम धर्म के साथ भारतवर्ष पर मुसलमानी आक्रमण होने लगे। देश की अराजकतापूर्ण परिस्थिति से आक्रमणकारियों ने भरपूर लाभ उठाया और अनेक घोर युद्धों और कठिनाइयों के बाद उन्होंने अपना राज्य स्थापित कर लिया। उस समय देश में अभिनय-कला के दो प्रधान केन्द्र थे, राज्य-सभा और देव-मन्दिर। आक्रमणकारियों द्वारा दोनों स्थानों का विध्वंस होने से नाटय-कला के प्रचार को यथेष्ट आघात पहुँचा। वैसे भी इस्लाम धर्म नाटय-कला की अनुमति नहीं देता। प्रारंभिक आक्रमणकारियों में धार्मिक जोश भी बहुत था। बाद को मुगल बादशाहों ने संगीत तथा अन्य ललित कलाओं को आश्रय अवश्य दिया, किन्तु नाटक का वे फिर भी आदर न कर सके। इस प्रकार भारतीय इतिहास के मध्य-युग में नाटय-कला उठ-सी गई। आधुनिक खोजों के फल-स्वरूप चौदहवीं शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के लगभग मध्य तक कुछ नाटक नाम से पुकारी जाने वाली रचनाओं का पता चला है, जैसे, विद्यापति कृत 'रुक्मिणीहरण' और 'पारिजातहरण'-कृष्णजीवन कृत 'करुणाभरण' हृदयराम कृत 'हनुमान नाटक', निवाज कृत 'शकुंतला नाटक', ब्रजवासीदास कृत 'प्रबोध चन्द्रोदय नाटक' आदि। परन्तु नाटक की रीति के अनुसार उन्हें 'नाटक' नाम से अभिहित नहीं किया जा सकता। उनमें पात्र-प्रवेशादि बातें नहीं पाई जातीं। वास्तव में नाटय-कला के दुर्दिन में उनका जन्म हुआ था। विदेशी जाति के सम्पर्क से उन्हें कोई प्रोत्साहन न मिला। साधारण जनता में पौराणिक और कुछ ऐतिहासिक व्यक्तियों से संबंधित लीलाओं और रूपक के कुछ हीन और भ्रष्ट रूपों का प्रचार अवश्य बना रहा।

उन्नीसवीं शताब्दी में हिन्दी-भाषा-भाषियों का फिर एक विदेशी जाति से संपर्क स्थापित हुआ। यह जाति ऐंग्लो-सैक्सन संस्कृति की संदेशवाहक अँगरेज जाति थी। अपना राज्य स्थापित कर लेने के बाद अँगरेजों ने नवीन या आधुनिक शिक्षा का प्रचार किया और अनेक स्कूल, कॉलेज

और अंत में यूनिवर्सिटियाँ स्थापित कीं। भारतेन्दु का जिस समय उदय हुआ उस समय इस प्रकार की शिक्षा-संस्थाएँ स्थापित हो चुकी थीं। इन संस्थाओं में अन्य अनेक विषयों के अतिरिक्त अँगरेज़ी साहित्य का भी अध्ययन होता था। अँगरेज़ों के पास अपना समुन्नत नाट्य-साहित्य था। साथ ही अँगरेज़ों ने अपने मनोरंजन के लिए कलकत्ता, बंबई, मद्रास पटना आदि बड़े-बड़े नगरों में अभिनय-शालाएँ भी स्थापित की थीं। इसलिए एक ओर तो भारतवासियों को अँगरेज़ी साहित्य के अध्ययन- और अँगरेज़ों के संपर्क से प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, दूसरी ओर स्वयं भारत वासियों के लिए नाट्य-रचना नई नहीं थी, उसकी परंपरा बीच में भले ही टूट गई हो। इसके साथ-साथ उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध में नवोत्थान-कालीन भावना भी काम कर रही थी। इन सब कारणों के फलस्वरूप अनुकूल वातावरण पाकर हिन्दी नाट्य-साहित्य का जन्म हुआ। जहाँ तक हिन्दी नाट्य-साहित्य के क्रमबद्ध इतिहास से संबंध है, उसका सूत्रपात उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध में ही माना जा सकता है। और यह समय भारतेन्दु के उदय का समय था। आधुनिक हिन्दी साहित्य के अन्य अनेक रूपों का जन्म देने के साथ-साथ उन्होंने हिन्दी नाट्य-साहित्य को भी जन्म दिया।

भारतेन्दु से पूर्व रीवाँ के महाराज विश्वनाथसिंह अपना 'आनन्द-रघुनन्दन नाटक' लिख चुके थे। इस नाटक में राम-कथा का वर्णन है। नाटक पद्यात्मक अधिक और ब्रजभाषा गद्य में है। यह नाटक छंद, गद्य, पात्र-प्रवेशादि तथा अन्य नाट्य-लक्षणों से समन्वित आगामी नाट्य-युग का अग्रदूत है। विशुद्ध नाटक रीति के अनुसार भारतेन्दु के पिता गोपालचन्द्र उपनाम गिरिधरदास (१८३३–१८६०) ने 'नहुष' नामक नाटक की रचना १८५९ में की, यद्यपि उसकी पूरी प्रति अब अप्राप्य है। तत्पश्चात् १८६१ में राजा लक्ष्मणसिंह ने कालिदास कृत 'शकुन्तला' का हिन्दी में अनुवाद किया। स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने १८६८ में चौरकवि कृत संस्कृत रचना 'विद्या-सुंदर' का बंगला के माध्यम द्वारा अनुवाद किया। १८७२ में कृष्ण मिश्र के 'प्रबोध चन्द्रोदय' के तृतीय अंक का 'पाखंड विडंबन' के नाम से, १८७३ में कांचनकवि कृत 'धनंजय-विजय' (व्यायोग) का,

१८७५ में राजशेखर कृत 'कर्पूर मंजरी' (सट्टक) का, १८७८ में संस्कृत के नाटककार विशाखदत्त कृत 'मुद्रा राक्षस' और अंत में १८८० के *लगभग शेक्सपियर कृत* 'Merchant of Venice' का 'दुर्लभ बन्धु' अर्थात् *'वंशपुर का महाजन'* (अपूर्ण) नाम से अनुवाद भारतेन्दु द्वारा प्रस्तुत हुए। मौलिक रचनाओं में उन्होंने 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' (१८७३)-प्रहसन, 'सत्य हरिश्चन्द्र' (१८७५)—नाटक, 'श्रीचंद्रावली' (१८७६)—नाटिका, 'विषस्य विषमौषधम्' (१८७६)—भाण, 'भारत जननी' (१८७७)—नाट्यगीत, 'भारत-दुर्दशा' (१८८०, बा० ब्रजरत्नदास के अनुसार, १८७६)—नाट्यरासक, 'नीलदेवी' (१८८१)—गीति-रूपक, 'अंधेर नगरी' (१८८१)—प्रहसन, 'प्रेमजोगिनी' (१८७५, अपूर्ण)—नाटिका, और 'सती प्रताप' (१८८३, अपूर्ण)—गीति-रूपक की रचना की। अपने संस्कृत और अँगरेज़ी नाट्य-शास्त्र के अध्ययन के आधार पर उन्होंने हिन्दी के नाट्य-शास्त्र, 'नाटक' (१८८३), का निर्माण किया। इस प्रबंध में उन्होंने नाट्य-शास्त्र का देशकाल और अवस्था के अनुसार परिवर्तित दशा के प्रकाश में अध्ययन कर प्राचीन और नवीन का समन्वय उपस्थित किया है। इस प्रकार भारतेन्दु ने सामाजिक एवं राजनीतिक, पौराणिक और प्रेमतत्व पर आधारित नाटक लिखे। ये तीन भाग तीन उद्गमों के समान हैं जिनसे तीन विभिन्न नाटकीय धाराएँ प्रवाहित हुईं—सामाजिक और राजनीतिक, पौराणिक, और प्रेम-संबंधी। आगे चल कर श्रीनिवासदास ने 'रणधीर और प्रेममोहिनी' (१८७८), 'तप्तासंवरण' (१८८३) और 'संयोगिता स्वयंवर' (१८८५) की, राधाकृष्णदास ने 'दुखिनी बाला' (१८८०), 'पद्मावती' (१८८२), 'धर्मालाप' (१८८५) और 'महाराणा प्रताप' (१८९७) की, किशोरीलाल गोस्वामी ने 'मयंकमंजरी महानाटक' (१८९१) की, राव कृष्णदेव शरणसिंह ने 'माधुरी रूपक' की, तथा अन्य अनेक नाटककारों ने अनेकानेक मौलिक एवं अनूदित नाटकों की रचना कर भारतेन्दु के कार्य को आगे बढ़ाया और हिन्दी साहित्य के इस अंग को पुष्ट किया। सामाजिक एवं धार्मिक सुधारवादी आंदोलनों और राजनीतिक चेतना के फलस्वरूप उत्पन्न आंदोलनों ने तत्कालीन नाट्य-साहित्य के लिए

उपकरण प्रस्तुत किए। लेखकों ने भारत के प्राचीन गौरव, तत्कालीन राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक एवं नैतिक अधोगति, भारतीय नवोत्थान की भावना, आदि को अपनी विविध रचनाओं का विषय बनाया। हिन्दी के तत्कालीन नाट्य-साहित्य में देश की सम्यक् उन्नति के लिए बलवती आकांक्षा प्रकट हुई है। रचना-पद्धति की दृष्टि से भी भारतेन्दु के नेतृत्व में हिन्दी के नाटककारों ने न तो प्राचीन नाट्य-शास्त्र और न नवीन पाश्चात्य नाट्य-शास्त्र का अन्धानुकरण किया। तत्कालीन सुहृद्-समाज की रुचि के अनुकूल उन्हे जो-जो बातें अच्छी लगीं वे बातें उन्होंने दोनों नाट्य-पद्धतियों से ग्रहण कीं। नाटककारों ने प्राचीन पद्धति के अनुसार नाटकों की रचना अवश्य की, किन्तु नवीन और प्राचीन के अनुसार मिश्र-पद्धति के आधार पर, अथवा केवल नवीन पद्धति के आधार पर भी नाटकों की रचना बराबर हुई। यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि हिन्दी की नाट्य-पद्धति निरंतर नवीनोन्मुख ही होती गई। बीसवीं शताब्दी में हिन्दी नाट्य-साहित्य पूर्णतः पाश्चात्य नाट्य-पद्धति के प्रभावांतर्गत आ गया है। इसके अतिरिक्त यह बात भी स्मरण रखनी चाहिए कि अत्यधिक प्रचारात्मकता आ जाने, पारसी थिएटरों से प्रभावित होने, जनता का अशिक्षित होने, हिन्दी रंगमंच का अभाव होने आदि अनेक कारणों से हिन्दी नाटकों का उतनी ही शीघ्रता के साथ पतन हुआ, जितनी तीव्र गति से उसका उत्थान हुआ था। साथ ही भारतेन्दुकाल में नाटकों के केवल बाह्यरूप पर ही विदेशी प्रभाव पड़ा। उस समय उसके आन्तरिक रूप में कोई परिवर्तन न हो सका। लेखकों का दृष्टिकोण अधिकांश में आदर्शपूर्ण बना रहा। पात्र कभी गिरते-उठते नहीं दिखाई देते, आदि से अंत तक उनका एक ही रूप बना रहता है। बुरा पात्र आदि से अंत तक बुरा बना रहता है और अच्छा पात्र आदि से अंत तक अच्छा बना रहता है। रसात्मकता और काव्यत्व का प्राधान्य भी उनमें मिलता है। नाटकीय कथावस्तु भी एक निश्चित मार्ग पर चलती हुई मिलती है; उसमें आरोह-अवरोहका अभाव मिलता है। किन्तु इतना सब कुछ प्राचीन होते हुए भी भारतेन्दु तथा उनके समकालीन नाटककारों ने हिन्दी नाट्य-साहित्य को नवीन दिशा की ओर मोड़ा।

मौलिक नाट्य-साहित्य की रचना के अतिरिक्त भारतेन्दु-युग में अनूदित नाटकों का निर्माण भी हुआ। संस्कृत नाटकों के अनुवाद-कार्य का श्रीगणेश राजा लक्ष्मणसिंह के 'शकुन्तला' नाटक से होता है। आगे भी यह परंपरा बराबर बनी रही। संस्कृत नाटकों के अतिरिक्त अँगरेज़ी नाटकों के भी अनुवाद हुए। सर विलियम जोन्स द्वारा 'शकुन्तला' का अँगरेज़ी में अनुवाद हो चुका था। और अँगरेज़ों ने अपने मनोरंजन के लिए भारत के बड़े-बड़े नगरों में प्रेक्षागृह स्थापित किए थे। पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार से भारतवासियों को भी ॲंगरेज़ी नाट्य-साहित्य के अध्ययन का सुअवसर प्राप्त हुआ। इस साहित्यिक आदान-प्रदान से हिन्दी में अँगरेज़ी के नाटकों के अनुवाद हुए। ॲंगरेज़ी नाटककारों में शेक्सपीयर के नाटकों का बहुत अधिक प्रचार हुआ। स्वयं भारतेन्दु ने उनके Merchent of Venice का 'दुर्लभ बन्धु' नाम से अनुवाद प्रारंभ किया था। १८७९ में तोताराम वर्मा ने जोसेफ़ एडीसन के 'Cato' का 'केटो कृतान्त' के नाम से हिन्दी में अनुवाद किया। तत्पश्चात् पुरोहित गोपीनाथ, लाली, लाला सीताराम आदि ने इस कार्य को और भी आगे बढ़ाया और बीसवीं शताब्दी में भी यह परंपरा जारी रही।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में भारतेन्दु द्वारा स्थापित नाट्य-परंपरा टूट चुकी थी और उसके स्थान पर पारसी थिएटरों के लिए लिखे गए नाटकों का प्रचार हो गया था। बेताब, हश्र काश्मीरी, शैदा, जौहर, राधेश्याम कथावाचक आदि ऐसे ही नाटककार थे। इन नाटककारों की रचनाओं में चमत्कारपूर्ण रोमांचकारी एवं आश्चर्य और कुतूहलपूर्ण दृश्यों का बाहुल्य रहता था और अद्भुत तथा भयानक रसों की प्रधानता रहती थी। उनमें प्रायः दो कथानक रहते थे—एक गंभीर और दूसरा हास्यपूर्ण। यह शेक्सपीयर की भद्दी नकल थी। इस प्रकार उस समय नाट्य-कला अराजकतापूर्ण और अव्यवस्थित थी। लेखकों को नाट्य-कला के वास्तविक आदर्श का ज्ञान नहीं था। नाटक लिखे तो अनेक गए, किन्तु श्रेष्ठ रचनाओं का अभाव था। साहित्यिक अभिरुचि रखनेवाले व्यक्तियों ने इस परिस्थिति के प्रति असंतोष प्रकट किया और उन्होंने बंगाल के द्विजेन्द्रलाल

रॉय, गिरीश घोष आदि के नाटकों के अनुवाद प्रस्तुत किए जिनमें साहित्यिकता के साथ-साथ रंगमंचीय आवश्यकताओं की पूर्ति भी पाई जाती थी। प्रथम महायुद्ध के लगभग तक सुन्दर एवं मौलिक नाटकों का एक प्रकार से अभाव मिलता है--कुछ अपवाद अवश्य थे। और जिस समय अशिक्षित ग्रामीण जनता रासलीलाओं और रामलीलाओं से अपना मन बहला रही थी, पढ़े-लिखे धार्मिक लोग पौराणिक नाटकों से संतोष प्राप्त कर रहे थे, अँगरेजी-शिक्षित लोग ऐतिहासिक और सुधार-संबन्धी नाटकों से अपनी राष्ट्रीय भावना पुष्ट कर रहे थे, उस समय जयशंकर 'प्रसाद' कथानक के संगठन, संवाद-शैली, रसात्मकता, भाषा-शैली, चरित्र-चित्रण आदि की दृष्टि से एक उच्च कोटि की नाट्य-कला लेकर सामने आए और हिन्दी नाट्य-साहित्य का सुन्दर विकास उपस्थित किया। 'प्रसाद' जी ने प्राचीन इतिहास को अपने नाटकों का माध्यम बनाया। किन्तु अनेक नाटककारों ने सामयिक सामग्री के आधार पर यथार्थवादी और समस्या-नाटकों की रचना की। 'प्रसाद' जी के बाद हिन्दी में अनेक उच्च कोटि के नाटक लिखे गए हैं। वर्तमान नाट्य-साहित्य पर पाश्चात्य प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित है।

भारतेन्दु की संक्षिप्त जीवनी

भारतेन्दु का जन्म १८५० ई० में हुआ था। वे प्रसिद्ध सेठ अमीचंद के वंशज थे और उनके पिता बाबू गोपालचन्द्र उपनाम गिरिधरदास हिन्दी के अच्छे कवि और अपने समय के प्रगतिशील व्यक्तियों में से थे। जब वे पाँच वर्ष के थे तब उनकी माता पार्वती देवी का और जब वे दस वर्ष के थे तब उनके पिता का देहान्त हो गया। पिता की असामयिक मृत्यु हो जाने के कारण उनकी शिक्षा का समुचित प्रबंध न हो सका। यद्यपि वे तीन-चार वर्ष तक बनारस के क्वीन्स कॉलेज में बराबर पढ़ने जाते थे, किन्तु उन्होंने जो कुछ ज्ञान प्राप्त किया वह स्वाध्याय द्वारा। वे भारतवर्ष की लगभग सभी प्रधान भाषाएँ जानते थे। पाँच-छः वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने अपनी काव्य-प्रतिभा का परिचय देना प्रारंभ कर दिया था। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में उनका विवाह मन्ना देवी से हुआ। विवाह के

बाद उन्होंने अनेक स्थानों की यात्रा की और अवसर मिलने पर सदैव अंध-विश्वास और अप्रामाणिकता का विरोध किया। उन्होंने स्वदेशी, निज-भाषा-उन्नति, राष्ट्रीयता, भारत की उन्नति, स्त्री-शिक्षा आदि बातों पर सदैव जोर दिया। ६ जनवरी, १८८५ को चौंतीस वर्ष चार महीने की अवस्था में उनका देहान्त हो गया। उनके दो पुत्र और एक पुत्री हुई थी। किन्तु पुत्रों का बाल्यावस्था में ही देहांत हो गया। उनकी पुत्री विद्यावती एक विदुषी महिला थीं। उनकी लोकप्रियता का प्रमाण इसीसे मिलता है कि सारे देश ने उन्हें 'भारतेन्दु' की उपाधि प्रदान की। भारतेन्दु की प्रतिभा चौमुखी थी और उन्होंने विविध प्रकार से हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाया। उनका व्यक्तित्व तत्कालीन शिक्षित धनिकवर्ग की विशेपताएँ लिए हुआ था। उन्होंने जीवन भर देश, भाषा और साहित्य की सेवा की। सार्वजनिक जीवन ग्रहण करते हुए उन्होंने 'कविवचन सुधा' (१८६८) 'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन' (१८७३) आदि पत्रों का संपादन किया। भारतीय इतिहास के संधि-काल में आविर्भाव होने से उन्होंने नवीन और प्राचीन, पाश्चात्य और भारतीय बातों का सुन्दर समन्वय उपस्थित कर भावी उन्नति के मार्ग का सृजन किया। अँगरेज़ी राज्य की स्थापना के फलस्वरूप जो राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और साहित्यिक परिवर्तन हो रहे थे उनके प्रति वे जागरूक थे। उनका जीवन-काल भारतीय नवोत्थान का प्रथम चरण था। यह नवोत्थान एक ओर तो अतीत से प्रेरणा ग्रहण कर रहा था और दूसरी ओर उसकी दृष्टि भविष्य पर लगी हुई थी। 'प्रेमघन', बालकृष्ण भट्ट, तोताराम वर्मा, प्रतापनारायण मिश्र, श्रीनिवासदास आदि ने भारतेन्दु के नेतृत्व में तत्कालीन जीवन के हीन और उज्ज्वल दोनों पक्षों पर दृष्टिपात कर देश के मंगलमय भविष्य की अवतारणा की।

'भारतदुर्दशा'

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'नाटक' नामक निबन्ध में नाटक के 'काव्य मिश्र', 'शुद्ध कौतुक' और 'भ्रष्ट'—ये तीन भेद किए हैं। 'शुद्ध कौतुक' के अंतर्गत कठपुतली, बाजीगरी आदि के खेल, 'भ्रष्ट' के अंतर्गत इन्द्रसभा, रास,

यात्रा, लीला, पारसी कंपनियों के नाटकादि माने हैं। 'काव्य मिश्र' के उन्होंने प्राचीन और नवीन दो भेद माने हैं। फिर प्राचीन के अंतर्गत भारतीय नाट्य-शास्त्र के अनुसार नाट्य के रूपक और उपरूपक की गणना की गई है। नवीन भेद के संबंध में उनका कथन इस प्रकार है:—

'आजकल योरोप के नाटकों की छाया पर जो नाटक लिखे जाते हैं और वंग देश में जिस चाल के बहुत से नाटक बन भी चुके हैं वह सब नवीन भेद में परिगणित हैं। प्राचीन की अपेक्षा नवीन की परम मुख्यता बारंबार दृश्यों के बदलने में है और इसी हेतु एक-एक अंक में अनेक-अनेक गर्भांकों की कल्पना की जाती है क्योंकि इस समय में नाटकों के लेखों के साथ विविध दृश्यों का दिखलाना भी आवश्यक समझा गया है।....ये नवीन नाटक मुख्य दो भेदों में बँटे हैं—एक नाटक, दूसरा गीतिरूपक। जिनमें कथा भाग विशेष और गीति न्यून हों वह नाटक और जिसमें गीति विशेष हों वह गीतिरूपक। यह दोनों कथाओं के स्वभाव से अनेक प्रकार के हो जाते हैं किन्तु उनके मुख्य भेद इतने किए जा सकते हैं यथा—१. संयोगांत—अर्थात् प्राचीन नाटकों की भाँति जिसकी कथा संयोग पर समाप्त हो। २. वियोगांत—जिसकी कथा अंत में नायिका वा नायक के मरण वा और किसी आपद घटना पर समाप्त हो। (उदाहरण "रणधीर प्रेम-मोहिनी") ३ मिश्र—अर्थात् जिसके अंत में कुछ लोगों का तो प्राणवियोग हो और कुछ सुख पावें।

इस नवीन नाटकों की रचना के मुख्य उद्देश्य ये होते हैं यथा—१. श्रृंगार २. हास्य ३. कौतुक ४. समाज-संस्कार ५. देश-वत्सलता। श्रृंगार और हास्य के उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं, जगत् में प्रसिद्ध है। कौतुक-विशिष्ट वह है जिसमें लोगों के चित्त-विनोदार्थ किसी यंत्रविशेष द्वारा या और किसी प्रकार अद्भुद घटना दिखाई जायं। समाज-संस्कारक नाटकों में देश की कुरीतियों का दिखलाना मुख्य कर्त्तव्य कर्म है। यथा शिक्षा की उन्नति, विवाह-संबंधी कुरीति-निवारण, अथवा धर्म-संबंधी अन्यान्य विषयों में संशोधन इत्यादि। किसी प्राचीन कथाभाग का इस बुद्धि से संगठन कि, देश की उससे कुछ

उन्नति हो, इसी प्रकार के अंतर्गत है। (इसके उदाहरण, सावित्री-चरित्र, दुःखिनी-बाला, बाल्यविवाह-विदूषक, जैसा काम वैसा ही परिणाम, जय नारसिंह की, चक्षुदान इत्यादि।) देशवत्सल नाटकों का उद्देश्य पढ़नेवालों वा देखनेवालों के हृदय में स्वदेशानुराग उत्पन्न करना है और ये प्रायः करुण और वीररस के होते हैं। (उदाहरण-भारतजननी, नीलदेवी, भारतदुर्दशा इत्यादि।) इन पाँच उद्देश्यों को छोड़ कर वीर, सख्य इत्यादि अन्य रसों में भी नाटक बनते हैं।'

इस लंबे उद्धरण से भारतेन्दु के नाटकीय दृष्टिकोण पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। उससे प्रकट हो जाता है कि इस क्षेत्र में भी उन्होंने समन्वयात्मक बुद्धि का प्रयोग किया। परिवर्तित समय और रुचि के अनुसार उन्होंने नवीन नाटच-पद्धति का अवलम्बन भी ग्रहण किया। 'भारत-दुर्दशा' में इस नवीन नाटच-पद्धति का योग है। किन्तु इस संबंध में यह बात ध्यान देने योग्य है कि नवीन नाटच-पद्धति का योग होने पर भी भारतेन्दु ने उसे 'नाटचरासक' के नाम से पुकारा है। प्राचीन नाटच-शास्त्र के अनुसार 'नाटचरासक' अठारह प्रकार के उपरूपकों में से एक है। स्वयं भारतेन्दु ने उसकी परिभाषा इस प्रकार दी है :—

'इसमें एक अंक, नायक उदात्त, नायिका वासक-सज्जा, पीठमर्द उपनायक, और अनेक प्रकार के गान नृत्य होते हैं।'

'नाटचरासक' की अन्य परिभाषाओं का अध्ययन करने और उनकी तुलना भारतेन्दु द्वारा दी गई परिभाषा से करने के फलस्वरूप दो निष्कष हमारे सामने आते हैं। १. भारतेन्दु द्वारा दी गई परिभाषा और अन्य परि-ाषाओं में कुछ बातें समान रूप से मिलती हैं। वे समान बातें हैं :—

(१) एक अंक।

(२) नायक उदात्त (धीरोदात्त)

(३) नायिका वासकसज्जा।

(४) उपनायक पीठमर्द।

(५) अनेक प्रकार के ताल और लय संयुक्त नृत्य और गान (अथवा लास्य के अंग)।

२. वे बातें जिनका उल्लेख भारतेन्दु ने अपनी परिभाषा में नहीं किया :—

(१) हास्य किंवा शृंगार रस-प्रधान।

(२) मुख और निर्वहण संधियाँ, अथवा प्रतिमुख संधि को छोड़ कर शेष चारों संधियाँ।

अस्तु, इन दो निष्कर्षों के प्रकाश में ही 'भारत-दुर्दशा' का अध्ययन करना उचित होगा।

रचना-पद्धति की दृष्टि से 'भारत दुर्दशा' मिश्र रचना है, अर्थात् उसमें नवीन और प्राचीन का मिश्रण है। कथाभाग की दृष्टि से उसमें पूर्ण नवीनता है, क्योंकि उसका उद्देश्य देशवत्सलतापूर्ण और समाज-संस्कारक है। हास्य-अथवा शृंगार-रस की प्रधानता के स्थान पर उसमें वीर और करुण-रस की प्रधानता है। 'भारतदुर्दशा' में छः अंक हैं। यह बात भी प्राचीन शास्त्रीय नियम के विरुद्ध है। स्वयं भारतेन्दु ने अपनी दी हुई परिभाषा में एक ही अंक माना है। नाटकीय रचना में आधुनिक दृश्य-योजना कथानक-वैचित्र्य की दृष्टि से रखी जाती है और उसके द्वारा कथांश के विविध सूत्र एक अंक के अन्तर्गत संगठित किए जाते हैं। 'भारतदुर्दशा' में यह तथ्य दृष्टिगोचर नहीं होता। उसके अंक कथानक के सीधे-सादे स्थूल विभाजन हैं, प्रत्येक अंक की कथा स्वतःपूर्ण नहीं है; आगे क्या होनेवाला है, इस बात की उत्सुकता बनी रहती है। साथ ही उनके द्वारा रसोद्रेक के स्थायी प्रभाव की सृष्टि होती है। ग्रंथ में मंगलाचरण के बाद न तो प्रारंभिक भूमिकाएँ हैं और न अंत में भरत-वाक्य है। योगी का लावनी-गान कोरस के ढंग पर है। नाटक का अंत भी दुःखपूर्ण है, अर्थात् भारतीय सुखान्त-पद्धति के अनुकूल नहीं है। कटार का आघात ही प्राचीन नियमानुसार वर्जित दृश्य है। प्राचीनता की दृष्टिसे 'भारतदुर्दशा' का नायक, भारत, धीरोदात्त नायक है और उपनायक, भारत-भाग्य, पीठमर्द है, क्योंकि वह भारत का मुख्य सहायक और अंतरंग मित्र है और उसमें सभी उत्तम गुण विद्यमान हैं। इसके अतिरिक्त यह रचना विविध प्रकार के गान, नृत्य आदि से समन्वित है। द्वितीय अंक में जहाँ नेपथ्य में गंभीर

और कठोर स्वर से यह सुनाई पड़ता है—'अब भी तुझको अपने नाथ का भरोसा है। खड़ा तो रह। अभी मैंने तेरी आशा की जड़ न खोद डाली तो मेरा नाम नहीं।' मुख संधि (बीज नामक अर्थ-प्रकृति और आरंभ नामक कार्यावस्था) है, और अंत में जब भारत-भाग्य छाती में कटार का आघात कर लेता है तो निर्वहण संधि (कार्य नामक अर्थ-प्रकृति और फलागम नामक कार्यावस्था) है। इन दो प्रधान बातों के अतिरिक्त वैसे तीसरे-चौथे अंकों में बिन्दु अर्थ-प्रकृति, प्रयत्न कार्यावस्था, और प्रतिमुख संधि, पाँचवें अंक में पताका अर्थप्रकृति (भारतवासियों की दुर्बलताएँ और डिसलायलटी द्वारा सब का पकड़ा जाना प्रधान फल का सिद्ध करने वाला है), प्राप्त्याशा कार्यावस्था और गर्भ संधि भी मानी जा सकती हैं। प्रतिमुख संधि इसलिए है क्योंकि तीसरे-चौथे अंकों में मुख संधि में दिए प्रधान फल का निदर्शन ही होता है। विमर्श संधि इस रचना में नहीं है, यद्यपि ऊपर दिए लक्षण के अनुसार प्रतिमुख संधि को छोड़कर नाट्य-रासक में शेष चारों संधियाँ हो सकती हैं। इस प्रकार 'भारतदुर्दशा' में नवीन और प्राचीन दोनों प्रकार के लक्षण घटित होते हैं। इनमें भी प्रमुखता नवीन लक्षणों की है।

'भारतदुर्दशा' का कथानक छः अंकों में इस प्रकार विभाजित है :–

१ अंक :—योगी का लावनी-गान द्वारा भारत के प्राचीन गौरव, पारस्परिक फूट और कलह के फलस्वरूप यवनों के भारतागमन और भारत में अँगरेजी राज्य की स्थापना और आर्थिक-शोषण तथा दुरवस्था का वर्णन है।

२ अंक :—दीनहीन भारत अपनी दुःख-गाथा सुनाते-सुनाते मूर्च्छित हो जाता है। आशा निर्लज्जता के साथ भारत को उठाकर ले जाती है।

३ अंक :—भारत-दुर्दैव सत्यानाश, फूट, संतोष, डाह, लोभ, भय, उपेक्षा, स्वार्थपरता, दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, आदि की सहायता से भारत के धन, बल और विद्या तीनों को नष्ट करता है।

४ अंक :—भारत-दुर्दैव रोग, आलस्य, मदिरा, अंधकार आाद ार भारत के नाश की तैयारियाँ करता ह ।

५ अंक :—सात सभ्यों की एक छोटी-सी समिति भारत-दुर्दैव से भारत की रक्षा का उपाय सोचती है। वहीं पर डिसलॉयल्टी का प्रवेश होता ;

और वह 'इंगलिश पालिसी नामक ऐक्ट के हाकिमेच्छा नामक दफ़ा से' सब को पकड़ ले जाती है।

६ अंक :—भारत-भाग्य अचेत पड़े हुए भारत को जगाने की चेष्टा करता है, वह उसके पूर्व गौरव का वर्णन कर उसे चेतन करना चाहता है, अँगरेज़ी राज्य में उन्नति करने की बात चाहता है, किन्तु भारत के उठने की आशा न देखकर अपनी छाती में कटार का आघात कर लेता है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि भारत की दीनहीन एवं पतित दशा और उसके प्राचीन गौरव का चित्रण करना भारतेन्दु का मुख्य उद्देश्य था। अंत में उन्होंने अपनी घोर निराशा का परिचय दिया है। किन्तु भारतेन्दुकालीन भारतीय जीवन की परिस्थितियों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि उस समय प्रकाश की कोई रेखा प्रकट भी तो नहीं हुई थी। वास्तव में भारतेन्दु ने अपनी इस रचना में यथार्थवादी दृष्टिकोण ग्रहण किया है।

'भारतदुर्दशा' की कथा राष्ट्रीय एवं सामाजिक और उत्पाद्य है। भारत की करुणाजनक परिस्थिति उसका प्रधान आधार है। कथा से शाखा प्रशाखाएँ नहीं निकलतीं और उसमें दुरूहता का अभाव है। वह समान गति से आगे बढ़ती चली जाती है और चरम सीमा पर समाप्त हो जाती है। अंकों का विस्तार भारतेन्दु ने स्वच्छंदतापूर्वक किया है। उनमें घटनाओं की प्रधानता न होकर एक भावना की प्रधानता है। ग्रंथ के प्रारंभिक अंश में ही रचना की कथा का आभास प्राप्त हो जाता है। भारतेन्दु ने समकालीन भारतीय सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन को आधार मान कर उसका संगठन किया है और वह भारतीय नवोत्थानकालीन भावना से पूर्णतः ओतप्रोत है। उसकी अधोगति में यदि विदेशी आक्रमणकारियों और शासकों का हाथ था तो स्वयं भारतवासियों का भी कोई कम हाथ नहीं था। ऐसी परिस्थिति में उन्होंने अँगरेजी-राज्य की अच्छाइयों को ध्यान में रखते हुए और उसकी कुनीतियों की निंदा करते हुए जन-हित पर ज़ोर दिया। कथा में लेखक ने अपने भावों का मानवीकरण उपस्थित किया है। वास्तव में नाटककार ने जो प्रसंग उठाया

है उसका सफलतापूर्वक और प्रभावोत्पादक ढंग से निर्वाह किया है। उसमें शिथिलता कहीं नहीं है।

'भारतदुर्दशा' के पात्र नाटककार की भावधारा के प्रतीक हैं। भारतेन्दु के समय में एक ओर तो भारतीय पतन के चिह्न चारों ओर विद्यमान थे, दूसरी ओर भारतीय नवोत्थान की भावना से प्रेरित नवशिक्षित भारतवासी जीवन के भावी प्रशस्त मार्ग का निर्माण करने में संलग्न थे। भारत में अँगरेज़ी साम्राज्यवादी और औपनिवेशिक शासन नीति के फलस्वरूप पश्चिम की जीवित जाति के साथ संपर्क स्थापित होने का जो परिणाम दृष्टिगोचर होना चाहिए था वह नवशिक्षितों के प्रयास करने पर भी दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में पालित-पोषित अल्पसंख्यक नवशिक्षितों को छोड़कर अधिकतर नवशिक्षित पश्चिम की चकाचौंध उत्पन्न करनेवाली सभ्यता के आघात से मार्ग-भ्रष्ट हो गए थे। इसके अतिरिक्त जो बहुत बड़ा भाग शेष था वह अंधकार-लिप्त था। यह सब कुछ देखकर भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में पालित-पोषित अल्पसंख्यक भारतवासियों को अत्यन्त दुःख और निराशा का सामना करना पड़ता था। भारत-दुर्दैव का उन्होंने सजीव और सफल चित्रण पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है। भारत-भाग्य और भारत का अंतिम चित्रण बहुत-कुछ वस्तु-स्थिति पर ही आधारित है। किंतु यदि हम भारत, भारत-भाग्य और सात सभ्यों के सभी कथनों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करें तो प्रकाश की क्षीण रेखा अवश्य दिखाई दे जाती है। ये सात सभ्य उन शक्तियों के प्रतिनिधि हैं जो उस समय भारत की दशा सुधारने में दत्त-चित्त थीं। ऐतिहासिक कारणों से बंगाली शिक्षा और सार्वजनिक क्षेत्र में अग्रगण्य थे। संपादक भी तत्कालीन सार्वजनिक जीवन के प्रधान अंग थे। कवियों (तथा अन्य साहित्यिकों) से ऐसे साहित्य-सृजन की आशा थी जो देश के उत्थान में सहायक हो सकता था। इन सभी का भारतेन्दु ने अत्यन्त सजीव वर्णन किया है। बंगालियों, संपादकों और रीतिकालीन परंपरा के मोह में ग्रस्त कवियों की प्रमुख-प्रमुख विशेषताओं का उद्घाटन करने में उन्होंने अपनी अभिव्यंजना-शक्ति का परिचय दिया है। इन

तीनों वर्गों को भारतेन्दु भली भाँति जानते थे। संपादक और कवि तो वे थे ही। साथ ही अपने व्यक्तिगत जीवन के अनुभव से देशी लोगों की प्रवृत्तियों से भी वे अनभिज्ञ नहीं थे। चुगली खाना, सरकारी अफ़सरों से सशंकित रहना और दूसरों के दोषों पर दृष्टि रखना, यही उनका कार्य था। अस्तु, इस रचना में भारतेन्दु ने प्रतीकों का भी सजीव और विस्मृत न होने वाला रूप उपस्थित किया है।

'भारतदुर्दशा' में पात्रों के संवादों में भारतेन्दु को सफलता प्राप्त हुई है। स्वगत-कथनों के द्वारा उनके पात्र परिस्थितियों पर प्रकाश डालते हैं। भारत-भाग्य का स्वगत-कथन इसका एक उदाहरण है । वह अपनी दशा की व्याख्या या उसका विश्लेषण भी करता है। 'भारतदुर्दशा' के कथोपकथन पात्रों के चरित्र और उनकी मनोदशा तथा आंतरिक भावों पर प्रकाश डालने वाले हैं। उनसे नाटकीय कथावस्तु को गति प्राप्त होती है और अनेक ऐसी बातों का पता चलता है जिन्हें नाटककार स्वयं अपनी ओर से न कह सकता था। भारत-भाग्य, भारत-दुर्दैव, बंगाली, एडीटर, कवि, देशी आदि पात्र अपने स्वभाव और धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति के अनुकूल भाव प्रकट करते हुए कथोपकथन में संलग्न होते हैं; वे अपनी विभिन्न स्थितियों के अनुसार भाव प्रकट करते हैं। ऐसा देखने में नहीं आता कि एक दुष्ट पात्र सज्जन की भाँति बात करे। भाषा भी सब पात्रों की स्वाभाविक है। सामान्यतः उन्होंने लंबे-लंबे कथोपकथन नहीं रखे, किन्तु जहाँ भावों की तीव्रता या रस की निष्पत्ति पाई जाती है वहाँ वे स्वगतों के रूप में आवश्यकता से अधिक लंबे होकर नाटकीय कार्य-व्यापार की प्रगति में बाधक सिद्ध होते हैं। भारत-भाग्य का स्वगत-कथन इसका एक उदाहरण है। किन्तु उसमें रसात्मकता का अभाव नहीं है। 'भारत-दुर्दशा' में भारत-भाग्य के स्वगत-कथन आदि में करुण और वीर रसों की निष्पत्ति पाई जाती है। भारतेन्दु के पात्र बेकार की बात नहीं करते। साथ ही वे सीधे-सीधे ढंग से बात करते हैं, न कि प्रपंच या हेर-फेर के साथ। पात्रों के मानसिक भावों का प्रकटीकरण भी अवसरानुकूल हुआ है। उनके कथोपकथनों में व्यावहारिकता, स्वच्छंदता और सजीवता

है। वे बोझिल नहीं हैं। वास्तव में अभिनय की दृष्टि से कुछ अपवाद-स्वरूप स्थलों को छोड़कर इस ग्रंथ में भारतेन्दु के कथोपकथन सहायक सिद्ध होंगे।

'भारत-दुर्दशा' में भारत-दुर्दैव के प्रयास में उत्साह होने के कारण वीररस और भारत-भाग्य की अवस्था में करुणरस माना जायगा। हास्य के लिए भी उसमें कहीं-कहीं उपयुक्त स्थल आ गए हैं। भारतेन्दु की इस रचना में तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन के जीते-जागते चित्र मिलते हैं। उसमें हमें भारत के उत्थान और पतन की कहानी मिलती है। रंगमंच की दृष्टि से भी 'भारत-दुर्दशा' में, कुछ परिवर्तनों के बाद (जैसे, लंबे-लंबे पद्यात्मक अंश या स्वगत-कथनों को छोटा कर देने से), कोई कठिनाई दृष्टिगोचर नहीं होती। उसके प्रतीकात्मक पात्र रंगमंच पर भली भाँति दिखाए जा सकते हैं। वास्तव में सभी दृष्टियों से भारतेन्दु की यह रचना एक सफल रचना है और हिन्दी-साहित्य में उसका गौरवपूर्ण स्थान है।

'भारत-दुर्दशा' से भारतेन्दु के विचारों पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। जब उनका ध्यान देश की अधोगति की ओर जाता था तो विदेशी आक्रमणकारियों के घातक प्रभाव के साथ-साथ प्राचीन आर्य गौरव और अनेक वीरों तथा वीर-कृत्यों के उदाहरणों में उनकी राष्ट्रीयता ध्वनित हो उठती थी। उन्होंने भारत के प्राचीन गौरव और वीर-कृत्यों के संबंध में लिखा है :—

'. . . . .सबके पहले जेहि ईश्वर धन बल दीनो।
सबके पहले जेहि सभ्य विधाता कीनो ॥. . . .' आदि

अथवा

'भारत के भुज-बल जगरच्छित।
भारत विद्या लहि जग सिच्छित

'भारत तेज जगत विस्तारा। भारत भय कंपत संसारा ॥. . . . .' आदि

उसी सभ्यता और संस्कृति के सर्वोच्च शिखर पर आसीन, ज्ञान-गरिमा से मंडित और वीर-कृत्यों के कारण सर्वपूज्य और जगत्वंद्य भारतवर्ष

की कैसी क्षोभपूर्ण अवस्था हो गई थी, उसकी कितनी दुर्दशा हो गई थी, वह भारतेन्दु की निम्नलिखित पंक्तियों से प्रकट होता है :—

'रोवहु सब मिलि क आवहु भारत भाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥ .....' आदि

अथवा

.कहा करी तकसीर तिहारी। रे बिधि रुष्ट याहि की बारी
सबै सुखी जग के नरनारी। हे विधना भारतहि दुखारी॥....'आदि

उन्होंने रोग, महर्घ, कर, मद्य, आलस्य, धनहीनता, बलहीनता, अविद्या, पारस्परिक फूट और कलह, यवनों (मुसलमानों) के कारण दुःख, पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण, धार्मिक-अंधविश्वास, छूआछूत, भूत-प्रेत और अनेक देवी-देवताओं की पूजा, दुर्भिक्ष, निज भाषा के प्रति उदासीनता और फलतः अधःपतन, नाना प्रकार के मतों का बाहुल्य, अनैक्य, असंगठन आदि का उल्लेख कर भारत में चारों ओर छाए हुए अंधियारे का अत्यन्त क्षोभपूर्ण शब्दों में वर्णन किया है। अँगरेज़ी-राज्य में दिन-रात की कलह और अशांति से छुटकारा, विविध वैज्ञानिक साधनों का सुखोपभोग, वैध-शासन, सुन्दर न्याय-पद्धति, नव्य-शिक्षा आदि के कारण उन्होंने अँगरेज़ी राज्य के गुणगान किए। प्रगति की इच्छा से उन्होंने अँगरेज़ों द्वारा प्रचलित सुधारों की सराहना की और उन्हें ग्रहण किया। अँगरेज़ी राज्य की नियामतों के साथ-साथ 'नराणां च नराधिपः' वाली भावना भी उस समय काम कर रही थी। इसलिए भारतेन्दु ने ब्रिटिश सिंहासन के प्रति भक्ति भी प्रकट की और विक्टोरिया को आर्येश्वरी, अंब, देवी आदि नामों से संबोधित किया। यही उनकी राजभक्ति की नींव है। इसी संबंध द्वारा वे भारत और ग्रेट-ब्रिटेन के समस्त हित-साधनों में सामञ्जस्य उपस्थित करने लगते थे। किन्तु नवीन शिक्षा प्राप्त कर मध्यम वर्ग ने देश को उन्नति के मार्ग पर अग्रसर करने की चेष्टा भी की और देश के शासन में भाग लेने की आकांक्षा प्रकट की। जब कभी अवसर मिलता था तो वे राजनीतिक दृष्टि से जन-हित की माँगें सरकार के सामने पेश करते थे और राजनीतिक तथा शासन-संबंधी अनीतियों को दूर करने की अपील करते थे। राजभक्ति

प्रकट करते हुए भी भारतेन्दु 'गवर्नमेंट के आदमी' नहीं थे। उनमें विचार-स्वातंत्र्य था। भारत की नवोत्थित राष्ट्रीयता से वे ओतप्रोत थे। राष्ट्रीय हित का ध्यान रखते हुए उन्होंने सदैव सरकारी अनीतियों का विरोध किया और इसीलिए उन्हें सरकार का कोप-भाजन बनना पड़ा। उन्होंने सरकार की आर्थिक नीति का घोर विरोध किया है :—

'अँगरेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन बिदेस चलि जात इहै अति ख्वारी ॥. . . .' आदि

वे चाहते थे कि भारत में स्वदेशी-प्रचार और औद्योगिक उन्नति हो। सात सभ्यों की कमेटी वाले अंश में उन्होंने सरकारी निरंकुशता का अत्यन्त प्रभावोत्पादक ढंग से दिग्दर्शन कराया है। जिस समय ये पंक्तियाँ लिखी गई थीं उस समय लार्ड लिटन के अनुदार शासन से प्रजा असन्तुष्ट थी।

अँगरेज़ सरकार के सामने अपनी माँगें पेश करने के साथ-साथ भारतेन्दु सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में जनता को सुधारने और उसे उन्नति के मार्ग की ओर अग्रसर करने के लिए सदा प्रयत्न करते रहते थे। नवीन शिक्षा के फलस्वरूप नवीन और उन्नत विचारों का जन्म हुआ। उनके प्रकाश में भारतीय जीवन का फिर से संस्कार करने की बात सोचना स्वाभाविक ही था। अँगरेजी राज्य में देशवासियों की निरुद्यमता, उनका आलस्य, पतनोन्मुख संतोष आदि की ओर लक्ष्य करते हुए भारतेन्दु भारत के मुख से कहलाते हैं :—

'हा ! यह वही भूमि है जहाँ साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के दूतत्व करने पर भी. . . . .' आदि।

अँगरेज़ों के पास विद्या का प्रकाश था। अंधकार वहाँ फटक भी नहीं सकता था। इन्हीं अँगरेज़ों के संपर्क में आने पर भारतेन्दु अपने देशवासियों को उन्नतिपथगामी देखना चाहते थे। किन्तु

'. . . . .अँगरेजहु को राज पाइकै रहे कूढ़ के कूढ़।
स्वारथ-पर विभिन्न-मति-भूले हिन्दू सब ह्वै मूढ़ ॥
जग के देश बढ़त बदि बदि के सब बाजी जेहि काल।
ताहू समय रात इनको है ऐसे ये बेहाल ॥. . . . .'

इस संबंध में उन्होंने 'भारत-दुर्दैव' की फौज के रूप में पतन के अनेक कारणों का उल्लेख किया है। अँगरेज़ी शिक्षितों का अंधानुकरण भी उन्हें अच्छा न लगता था :—

'....लिया भी तो अँगरेज़ों से औगुन!'....

अतएव भारतेन्दु को भारत का सर्वनाश निश्चय ही दिखाई पड़ता था :—

'निहचै भारत को अब नास।.....' आदि

यद्यपि अँगरेज़ अफसरों की निरंकुशता उनके मार्ग में बाधक थी, तब भी वे सुधार-आंदोलन की अत्यन्त आवश्यकता समझते थे। किन्तु भारत-भाग्य के शब्दों में निराशा प्रकट करते हुए भी उनका कहना है :—

'जागो जागो रे भाई।
सोअत निसि बैस गँवाई। जागो.....' आदि।

वास्तव में भारतेन्दु भारतीय नवोत्थान के साकार प्रतीक थे। एक ओर यदि उनकी दृष्टि भूतकाल के गौरव की ओर थी, तो दूसरी ओर वे प्राचीन और नवीन के सुन्दर समन्वय द्वारा भविष्य की ओर आशा लगाए हुए थे। वे देश को पतन के गर्त से निकाल कर उन्नति की ओर ले जाना चाहते थे। किन्तु देशवासियों की निरुद्यमता देख उन्हें अत्यन्त मानसिक क्लेश होता था। 'भारतदुर्दशा' इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

भारतदुर्दशा

(मंगलाचरण)

जय सतजुग-थापन-करन, नासन म्लेच्छ-अचार।
कठिन धार तरवार कर, कृष्ण कल्कि अवतार।।

पहिला अंक

स्थान—बीथी

(एक योगी गाता है)

(लावनी)

रोअहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई।
हा हा! भारतदुर्दशा न देखी जाई।। ध्रुव।।
सबके पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनो।
सबके पहिले जेहि सभ्य बिधाता कीनो।।
सबके पहिले जो रूप-रंग रस-भीनो।
सबके पहिले विद्याफल जिन गहि लीनो।।
अब सबके पीछे सोई परत लखाई।।
हा हा! भारतदुर्दशा न देखी जाई।।
जहँ भए शाक्य हरिचंदरु नहुष ययाती।
जहँ राम युधिष्ठिर बासुदेव सर्याती।।
जहँ भीम करन अर्जुन की छटा दिखाती।
तहँ रही मूढ़ता कलह अविद्या-राती।।
अब जहँ देखहु तहँ दुःखहि दुःख दिखाई।
हा हा! भारतदुर्दशा न देखी जाई।।

लरि बैदिक जैन डुबाई पुस्तक सारी।
करि कलह बुलाई जवनसैन पुनि भारी॥
तिन नासी बुधि बल विद्या धन बहु बारी।
छाई अब आलस-कुमति-कलह अँधियारी॥
भए अंध पंगु सब दीन हीन बिलखाई।
हा हा! भारतदुर्दशा न देखी जाई॥
अँगरेजराज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन बिदेस चलि जात इहै अति ख्वारी॥
ताहू पै महँगी काल रोग बिस्तारी।
दिन दिन दूने दुख ईस देत हा हा री।
सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई।
हा हा! भारतदुर्दशा न देखी जाई॥

(पटोत्तोलन)

दूसरा अंक

स्थान—श्मशान, टूटे-फूटे मंदिर

कौआ, कुत्ता, स्यार घूमते हुए, अस्थि इधर-उधर पड़ी है।

(भारत * का प्रवेश)

भारत—हा! यह वही भूमि है जहाँ साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णचंद्र के दूतत्व करने पर भी वीरोत्तम दुर्योधन ने कहा था "सूच्यग्रं नैव दास्यामि विना युद्धेन केशव" और आज हम उसी भूमि को देखते हैं कि श्मशान हो रही है। अरे यहाँ की योग्यता, विद्या, सभ्यता, उद्योग, उदारता, धन, बल, मान, दृढ़चित्तता, सत्य सब कहाँ गए? अरे पामर जयचन्द्र! तेरे उत्पन्न हुए बिना मेरा क्या डूबा जाता था? हाय! अब मुझे कोई शरण देने वाला नहीं। (रोता है) मातः, राजराजेश्वरि, विजयिनी! मुझे बचाओ। अपनाए की लाज रक्खो। अरे दैव ने सब कुछ मेरा नाश कर दिया पर अभी संतुष्ट नहीं हुआ। हाय! मैंने जाना था कि अँगरेज़ों के हाथ में आकर हम अपने दुखी मन को पुस्तकों से बहलावेंगे और सुख मानकर जन्म बितावेंगे पर दैव से वह भी न सहा गया। हाय! कोई बचानेवाला नहीं।

(गीत)

कोऊ नहिं पकरत मेरो हाथ।
बीस कोटि सुत होत फिरत मैं हा हा होय अनाथ॥
जाकी सरन गहत सोइ भारत सुनत न कोउ दुखगाथ।
दीन बन्यौ इत सों उत डोलत टकरावत निज माथ॥
दिन-दिन बिपति बढ़त सुख छीजत देत कोऊ नहिं साथ।
सब बिधि दुख सागर मैं डूबत धाइ उबारौ नाथ॥

---

* फटे कपड़े पहिने, सिर पर अर्द्ध किरीट, हाथ में टेकने की छड़ी, शिथिल अंग।

(नेपथ्य में गंभीर और कठोर स्वर से)

अब भी तुझको अपने नाथ का भरोसा है! खड़ा तो रह। अभी मैंने तेरी आशा की जड़ न खोद डाली तो मेरा नाम नहीं।

भारत—(डरता और काँपता हुआ रोकर) अरे यह विकरालवदन कौन मुँह बाए मेरी ओर दौड़ता चला आता है? हाय-हाय इससे कैसे बचेंगे। अरे यह तो मेरा एक ही कौर कर जायगा। हाय! परमेश्वर बैकुंठ में और राजराजेश्वरी सात समुद्र पार, अब मेरी कौन दशा होगी? हाय अब मेरे प्राण कौन बचावेगा? अब कोई उपाय नहीं। अब मरा, अब मरा। (मूर्छा खाकर गिरता है)।

(निर्लज्जता * आती है)

निर्लज्जता—मेरे आछत तुमको अपने प्राण की फिक्र। छिः छिः! जीओगे तो भीख माँग खाओगे। प्राण देना तो कायरों का काम है। क्या हुआ जो धन-मान सब गया "एक ज़िन्दगी हज़ार नेआमत है।" (देखकर) अरे सचमुच बेहोश हो गया तो उठा ले चलें। नहीं-नहीं, मुझसे अकेले न उठेगा। (नेपथ्य की ओर) आशा! आशा! जल्दी आओ।

(आशा ‡ आती है)

निर्लज्जता—यह देखो भारत मरता है, जल्दी इसे घर उठा ले चलो।

आशा—मेरे आछत किसी ने भी प्राण दिया है? ले चलो, अभी जिलाती हूं।

(दोनों उठाकर भारत को ले जाती हैं)

---

* जाँघिया—सिर खुला—ऊँची चोली—दुपट्टा ऐसा गिरता पड़ता कि अंग खुले, सिर खुला, खानगियों का सा वेष।

‡ लड़की के वेष में।

तीसरा अंक

स्थान-मैदान

(फौज के डेरे दिखाई पड़ते हैं। भारतदुर्दैव * आता है)

भारतदु०—कहाँ गया भारत मूर्ख! जिसको अब भी परमेश्वर और राजराजेश्वरी का भरोसा है? देखो तो अभी इसकी क्या-क्या दुर्दशा होती है।

(नाचता और गाता हुआ)

अरे!
उपजा ईश्वर कोप से, औ आया भारत बीच।
छार-खार सब हिंद करूँ, मैं, तो उत्तम नहिं नीच।।
मुझे तुम सहज न जानो जी, मुझे इक राक्षस मानो जी।।
कौड़ी-कौड़ी को करूँ, मैं सबको मुहताज।
भूखे प्रान निकालूं इनका, तो मैं सच्चा राज।। मुझे०
काल भी लाऊँ महँगी लाऊँ, और बुलाऊँ रोग।
पानी उलटा कर बरसाऊँ, छाऊँ जग में सोग। मुझे०
फूट बैर औ कलह बुलाऊ, ल्याऊँ सुस्ती जोर।
घर-घर में आलस फैलाऊँ, छाऊँ दुख घनघोर।। मुझे०
काफिर काला नीच पुकारूँ, तोड़ूं पैर औ हाथ।
दूं इनको संतोष खुशामद, कायरता भी साथ।। मुझे०
मरी बुलाऊँ देस उजाड़ूं, महँगा करके अन्न।
सबके ऊपर टिकस लगाऊँ, धन है मुझको धन्न।।
मुझे तुम सहज न जानो जी, मुझे इक राक्षस मानोजी।

(नाचता है)

अब भारत कहाँ जाता है, ले लिया है। एक तस्सा बाकी है, अबकी हाथ में वह भी साफ है! भला हमारे बिना और ऐसा कौन कर

---

* क्रूर, आधा क्रिस्तानी आधा मुसलमानी वेष, हाथ में नंगी तलवार लिए।

सकता है कि अँगरेज़ी अमलदारी में भी हिंदू न सुधरे! लिया भी तो अँगरेज़ों से औगुन! हा हाहा! कुछ पढ़े-लिखे मिलकर देश सुधारा चाहते हैं! हहा हहा! एक चने से भाड़ फोड़ेंगे। ऐसे लोगों को दमन करने को मैं जिले के हाकिमों को न हुक्म दूंगा कि इनको डिसलायल्टी में पकड़ो और ऐसे लोगों को हर तरह से खारिज करके जितना जो बड़ा मेरा मित्र हो उसको उतना बड़ा मेडल और खिताब दो। हैं! हमारी पालिसी के विरुद्ध उद्योग करते हैं, मूर्ख! यह क्यों? मैं अपनी फौज ही भेजके न सब चौपट करता हूँ। (नेपथ्य की ओर देखकर) अरे कोई है? सत्यानाश फौजदार को तो भेजो।

(नेपथ्य में से "जो आज्ञा" का शब्द सुनाई पड़ता है)

देखो मैं क्या करता हूँ। किधर-किधर भागेंगे।

(सत्यानाश फौजदार आते हैं)

(नाचता हुआ)

सत्या०फौ०—हमारा नाम है सत्यानास। आए हैं राजा के हम पास॥
धरके हम लाखों ही भेस। किया चौपट यह सारा देस॥
वहुत हमने फैलाए धर्म। बढ़ाया छुआछूत का कर्म॥
होके जयचंद हमने एक बार। खोल ही दिया हिंद का द्वार॥
हलाकू चंगेजो तैमूर। हमारे अदना अदना सूर॥
दुरानी अहमद नादिरसाह। फौज के मेरे तुच्छ सिपाह॥
है हममें तीनो कल बल छल। इसी से कुछ नहिं सकती चल॥
पिलावेंगे हम खूब शराब। करेंगे सबको आज खराब॥

भारतदु०—अहा सत्यानाशजी आए। आओ, देखो अभी फौज को हुक्म दो कि सब लोग मिलके चारों ओर से हिंदुस्तान को घेर लें। जो पहिले से घेरे हैं उनके सिवा औरों को भी आज्ञा दो कि बढ़ चलें।

सत्या० फौ०—महाराज "इंद्रजीत सन जो कछु भाखा, सो सब जनु पहिलहिं करि राखा।" जिनको आज्ञा हो चुकी है वे तो अपना काम कर ही चुके और जिसको जो हुक्म हो, कह दिया जाय।

भारत दु०—किसने किसने क्या क्या किया है?

सत्या० फौ०—महाराज! धर्म ने सबके पहिले सेवा की।

रचि बहु बिधि के वाक्य पुरानन माँहि घुसाए।
शैव शाक्त वैष्णव अनेक मत प्रगटि चलाए॥
जाति अनेकन करी नीच अरु ऊँच बनायो।
खान पान संबंध सबन सों बरजि छुड़ायो॥
जन्मपत्र बिधि मिले ब्याह नहिं होन देत अब।
बालकपन में ब्याहि प्रीति-बल नास कियो सब॥
करि कुलीन के बहुत ब्याह बल बीरज मारयो।
विधवा-ब्याह निषेध कियो बिभिचार प्रचारयो॥
रोकि विलायत-गमन कूपमंडूक बनायो।
औरन को संसर्ग छुड़ाइ प्रचार घटायो॥
बहु देवी देवता भूत प्रेतादि पुजाई।
ईश्वर सों सब बिमुख किए हिंदू घबराई॥

भारतदु०—आहा! हाहा! शाबाश! शाबाश! हाँ, और भी कुछ धर्म्म ने किया?

सत्या०फौ०—हाँ महाराज।

अपरस सोल्हा छूत रचि, भोजन-प्रीति छुड़ाय।
किए तीन तेरह सबै, चौका चौका लाय॥

भारतदु०—और भी कुछ?

सत्या० फौ०—हाँ,

रचिकै मत वेदांत को, सबको ब्रह्म बनाय।
हिंदुन पुरुषोत्तम कियो, तोरि हाथ अरु पाय॥

महाराज, वेदांत ने बड़ा ही उपकार किया। सब हिंदू ब्रह्म हो गए। किसी को इतिकर्त्तव्यता बाकी ही न रही। ज्ञानी बनकर ईश्वर से विमुख हुए, रूक्ष हुए, अभिमानी हुए और इसी से स्नेहशून्य हो गए। जब स्नेह ही नहीं तब देशोद्धार का प्रयत्न कहाँ? बस, जय शंकर की।

भारतदु०—अच्छा, और किसनें-किसने क्या किया?

सत्या० फौ०—महाराज, फिर संतोष ने भी बड़ा काम किया। राजा-प्रजा सबको अपना चेला बना लिया। अब हिंदुओं को खाने मात्र से काम, देश से कुछ काम नहीं। राज न रहा, पेनशन ही सही। रोजगार न रहा, सूद ही सही। वह भी नहीं, तो घर ही का सही, 'संतोषं परमं सुखं', रोटी ही को सराह-सराह के खाते हैं। उद्यम की ओर देखते ही नहीं। निरुद्यमता ने भी संतोष को बड़ी सहायता दी। इन दोनों को बहादुरी का मेडल जरूर मिले। व्यापार को इन्हीं ने मार गिराया।

भारतदु०—और किसने क्या किया ?

सत्या० फौ०—फिर महाराज जो धन की सेना बची थी उसको जीतने को भी मैंने बड़े बाँके वीर भेजे। अपव्यय, अदालत, फैशन और सिफारिश इन चारों ने सारी दुश्मन की फौज तितिर बितिर कर दी। अपव्यय ने खूब लूट मचाई। अदालत ने भी अच्छे हाथ साफ किए। फैशन ने तो बिल और टोटल के इतने गोले मारे कि अंटाधार कर दिया और सिफारिश ने भी खूब ही छकाया। पूरब से पच्छिम और पच्छिम से पूरब तक पीछा करके खूब भगाया। तुहफे, घूस और चंदे के ऐसे बम के गोले चलाए कि "बम बोल गई बाबा की चारों दिसा" धूम निकल पड़ी। मोटा भाई बना-बनाकर मूंड़ लिया। एक तो खुद ही यह सब पँड़िया के ताऊ, उस पर चुटकी बजी, खुशामद हुई, डर दिखाया गया, बराबरी का झगड़ा उठा, बाँय-धाँय गिनी गई*, वर्णमाला कंठ कराई,† बस हाथी के खाए कैथ हो गए। धन की सेना ऐसी भागी कि कब्रों में भी न बची, समुद्र के पार ही शरण मिली।

भारतदु०—और भला कुछ लोग छिपाकर भी दुश्मनों की ओर भेजे थे ?

सत्या० फौ०—हाँ, सुनिए। फूट, डाह, लोभ, भय, उपेक्षा, स्वार्थपरता, पक्षपात, हठ, शोक, अश्रुमार्जन और निर्बलता इन एक दरजन दूती

---

*सलामी मिली।

†सी० आई० ई० आदि उपाधियाँ मिलीं।

और दूतों को शत्रुओं की फौज में हिला-मिलाकर ऐसा पंचामृत बनाया कि सारे शत्रु बिना मारे घंटा पर के गरुड़ हो गए। फिर अंत में भिन्नता गई। इसने ऐसा सबको काई की तरह फाड़ा कि भाषा धर्म, चाल, व्यवहार, खाना, पीना सब एक-एक योजन पर अलग-अलग कर दिया। अब आवें बचा ऐक्य! देखें आ ही के क्या करते हैं!

भारत दु०—भला भारत का शस्य नामक फौजदार अभी जीता है कि मर गया? उसकी पलटन कैसी है?

सत्या० फौ०—महाराज! उसका बल तो आपकी अतिवृष्टि और अनावृष्टि नामक फौजों ने बिलकुल तोड़ दिया। लाही, कीड़े, टिड्डी और पाला इत्यादि सिपाहियों ने खूब ही सहायता की। बीच में नील ने भी नील बन कर अच्छा लंकादहन किया।

भारत दु०—वाह! वाह! बड़े आनंद की बात सुनाई। तो अच्छा तुम जाओ। कुछ परवाह नहीं, अब ले लिया है। बाकी साकी अभी सपराए डालता हूँ। अब भारत कहाँ जाता है। तुम होशियार रहना और रोग, महर्घ, कर, मद्य, आलस और अंधकार को जरा क्रम से मेरे पास भेज दो।

सत्या० फौ०—जो आज्ञा।

भारतदु०—अब उसको कहीं शरण न मिलेगी। धन, बल और विद्या तीनों गईं। अब किसके बल कूदेगा?

(यवनिका गिरती है)

पटोत्तोलन

चौथा अंक

(कमरा अँगरेज़ी सजा हुआ, मेज, कुरसी लगी हुई।
कुरसी पर भारतदुर्दैव बैठा है)

(रोग का प्रवेश)

रोग—(गाता हुआ) जगत सब मानत मेरी आन।
मेरी ही टट्टी रचि खेलत नित सिकार भगवान॥
मृत्यु कलंक मिटावत मैं ही मोसम और न आन।
परम पिता हमहीं वैद्यन के अत्तारन के प्रान॥

मेरा प्रभाव जगतविदित है। कुपथ्य का मित्र और पथ्य का शत्रु मैं ही हूँ। त्रैलोक्य में ऐसा कौन है जिस पर मेरा प्रभुत्व नहीं। नजर, श्राप, भूत, प्रेत, टोना, टनमन, देवी-देवता सब मेरे ही नामांतर हैं। मेरी ही बदौलत ओझा, दरसनिए, सयाने, पंडित, [illegible] लोगों को ठगते हैं। (आतंक से) भला मेरे प्रबल प्रताप को ऐसा कौन है जो निवारण करे। हह! चुँगी की कमेटी सफाई करके मेरा निवारण करना चाहती है, यह नहीं जानती कि जितनी सड़क चौड़ी होगी उतने ही हम भी "जस जस सुरसा बदन बढ़ावा, तासु दुगुन कपि रूप दिखावा।" (भारतदुर्दैव को देख कर) महाराज! क्या आज्ञा है?

भारतदु०—आज्ञा क्या है, भारत को चारों ओर से घेर लो।

रोग—महाराज! भारत तो अब मेरे प्रवेश-मात्र से मर जायगा। घेरने का कौन काम है? धन्वंतरि और काशिराज दिवोदास का अब समय नहीं है और न सुश्रुत वाग्भट्ट-चरक ही हैं। बैदगी अब केवल जीविका के हेतु बची है। काल के बल से औषधों के गुणों और लोगों के प्रकृति में भी भेद पड़ गया। बस अब हमें कौन जीतेगा और फिर हम ऐसी सेना भेजेंगे जिनका भारतवासियों ने कभी नाम तो सुना ही न होगा; तब भला वे उसका प्रतिकार क्या करेंगे! हम भेजेंगे विस्फोटक, हैजा, डंगू, अपाप्लेक्सी। भला इनको हिंदू लोग क्या

रोकेंगे? ये किधर से चढ़ाई करते हैं और कैसे लड़ते हैं जानेंगे तो हई नहीं, फिर छुट्टी हुई। वरंच महाराज, इन्हीं से मारे जायँगे और इन्हीं को देवता करके पूजेंगे, यहाँ तक कि मेरे शत्रु डाक्टर और विद्वान इसी विस्फोटक के नाश का उपाय टीका लगाना इत्यादि कहेंगे तो भी ये सब उसको शीतला के डर से न मानेंगे और उपाय आछत अपने हाथ प्यारे बच्चों की जान लेंगे।

भारतदु०—तो अच्छा तुम जाओ। महर्घ और टिकस भी यहाँ आते होंगे सो उनको साथ लिए जाओ। अतिवृष्टि, अनावृष्टि की सेना भी वहाँ जा चुकी है। अनैक्य और अंधकार की सहायता से तुम्हें कोई भी रोक न सकेगा। यह लो पान का बीड़ा लो। (बीड़ा देता है)

(रोग बीड़ा लेकर प्रणाम करके जाता है)

भारतदु०—सब, अब कुछ चिंता नहीं, चारों ओर से तो मेरी सेना ने उसको घेर लिया, अब कहाँ बच सकता है।

(आलस्य * का प्रवेश)

आलस्य—हहा! एक पोस्ती ने कहा, पोस्ती ने पी पोस्त नौ दिन चले अढ़ाई कोस। दूसरे ने जवाब दिया, अबे वह पोस्ती न होगा डाक का हरकारा होगा। पोस्ती ने जब पोस्त पी तो या कूँड़ी के उस पार या इस पार ठीक है। एक बारी में हमारे दो चेले लेटे थे और उसी राह से एक सवार जाता था। पहिले ने पुकारा "भाई सवार सवार, यह पक्का आम टपक कर मेरी छाती पर पड़ा है, जरा मेरे मुँह में तो डाल।" सवार ने कहा "अजी तुम बड़े आलसी हो। तुम्हारी छाती पर आम पड़ा है सिर्फ हाथ से उठा कर मुँह में डालने में यह आलस है!" दूसरा बोला "ठीक है साहब, यह बड़ा ही आलसी है।" रात भर कुत्ता मेरा मुँह चाटा किया और यह पास ही पड़ा था पर इसने न हाँका।" सच है किस जिंदगी के वास्ते तकलीफ उठाना, मजे में हालमस्त पड़े रहना। सुख केवल हम में है "आलसी पड़े कुएँ में वहीं चैन है।"

---

* मोटा आदमी जँभाई लेता हुआ धीरे-धीरे आवेगा।

(गाता है)

(ग़ज़ल)

दुनिया में हाथ-पैर हिलाना नहीं अच्छा।
मर जाना पै उठके कहीं जाना नहीं अच्छा॥
बिस्तर पर मिस्ले लोथ पड़े रहना हमेशा।
बंदर की तरह धूम मचाना नहीं अच्छा॥
"रहने दो जमीं पर मुझे आराम यहीं है।"
छेड़ो न नक्शेपा हैं मिटाना नहीं अच्छा॥
उठ करके घर से कौन चले यार के घर तक।
"मौत अच्छी है पर दिल का लगाना नहीं अच्छा॥"
धोती भी पहिने जब कि कोई गैर पिन्हा दे।
उमरा को हाथ-पैर चलाना नहीं अच्छा॥
सिर भारी चीज है इसे तकलीफ हो तो हो।
पर जीभ बिचारी को सताना नहीं अच्छा॥
फाकों से मरिए पर न कोई काम कीजिए।
दुनिया नहीं अच्छी है जमाना नहीं अच्छा॥
सिज़दे से गर बिहिश्त मिले दूर कीजिये।
दोजख ही सही सिर का झुकाना नहीं अच्छा॥
मिल जाय हिंद खाक में हम काहिलों को क्या॥
ऐ मीरे-फर्श रंज उठाना नहीं अच्छा॥

और क्या। काजीजी दुबले क्यों, कहें शहर के अंदेशे से। अरे 'कोउ नृप होउ हमें का हानी, चेरि छाँड़ि नहिं होउब रानी।' आनंद से जन्म बिताना। 'अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम। दास मलूका कह गए, सबके दाता राम॥' "जो पढ़तव्यं सो मरतव्यं, जो न पढ़तव्यं सो भी मरतव्यं, तब फिर दंतकटाकट किं कर्तव्यं?" भई जात में ब्राह्मण, धर्म में वैरागी, रोजगार में सूद और दिल्लगी में गप सब से अच्छी। घर बैठे जन्म बिताना, न कहीं जाना और न कहीं आना। बस खाना हगना, मूतना, सोना, बात बनाना, तान

मारना और मस्त रहना। अमीर के सर पर और क्या सुरखाब का पर होता है, जो कोई काम न करे वही अमीर। 'तवंगरी बदिलस्त न बमाल।'[१] दोई तो मस्त हैं या मालमस्त या हालमस्त। (भारत-दुर्दैव को देखकर उसके पास जाकर प्रणाम करके) महाराज! मैं सुख से सोया था कि आपकी आज्ञा पहुँची, ज्यों-त्यों कर यहाँ हाजिर हुआ। अब हुक्म ?

भारत दु०—तुम्हारे और साथी सब हिंदुस्तान की ओर भेजे गए हैं, तुम भी वहीं जाओ और गपनी जोगनिन्द्रा से सब को अपने वश में करो।

आलस्य—बहुत अच्छा। (आप ही आप) आह रे बप्पा! अब हिंदुस्तान में जाना पड़ा। तव चलो धीरे-धीरे चलें। हुक्म न मानेंगे तो लोग कहेंगे "सरबस खाइ भोग करि नाना, समरभूमि भा दुरलभ प्राना।" अरे करने को दैव आपही करेगा, हमारा कौन काम है, पर चलें।

(यही सब बुड़बुड़ाता हुआ जाता है)

(मदिरा * आती है)

मदिरा—भगवान् सोम की मैं कन्या हूँ। प्रथम वेदों ने मधु नाम से मुझे आदर दिया। फिर देवताओं की प्रिया होने से मैं सुरा कहलाई और मेरे प्रचार के हेतु श्रौत्रामणि यज्ञ की सृष्टि हुई। स्मृति और पुराणों में भी प्रवृत्ति मेरी नित्य कही गई। तंत्र तो केवल मेरे ही हेतु बने। संसार में चार मत बहुत प्रबल हैं, हिंदू, बौद्ध, मुसलमान और क्रिस्तान। इन चारों में मेरी चार पवित्र प्रतिमूर्ति विराजमान हैं। सोमपान, बीराचमन, शरावुन्तहूरा और बापटैजिंग वाइन। भला कोई कहे तो इनको अशुद्ध? या जो पशु हैं उन्होंने अशुद्ध कहा ही तो क्या हमारे चाहने वालों के आगे वे लोग बहुत होंगे तो फी सैकड़े दस होंगे, जगत् में तो हम व्याप्त हैं। हमारे चेले लोग सदा यही कहा करते हैं। और फिर सरकार के राज्य के तो हम एकमात्र भूषण हैं।

---

१. अमीरी हृदय से है, धन से नहीं है।

* साँवली सी स्त्री, लाल कपड़ा, सोने का गहना, पैर में घुंघरू।

दूध सुरा दधिहू सुरा, सुरा अन्न धन धाम।
वेद सुरा ईश्वर सुरा, सुरा स्वर्ग को नाम॥
जाति सुरा विद्या सुरा, बिनु मद रहै न कोय।
सुधरी आजादी सुरा, जगत सुरामय होय॥
ब्राह्मण क्षत्री वैश्य अरु, सैयद सेख पठान।
दै बताइ मोहि कौन जो, करत न मदिरा पान॥
पियत भट्ट के ठट्ट अरु, गुजरातिन के वृन्द।
गौतम पियत अनंद सों, पियत अग्र के नंद॥
होटल में मदिरा पियें, चोट लगे नहिं लाज।
लोट लए ठाढ़े रहत, टोटल देवै काज॥
कोउ कहत मद नहिं पियैं, तो कछु लिख्यो न जाय।
कोउ कहत हम मद्यबल, करत वकीली आय॥
मद्यहि के परभाव सों, रचत अनेकन ग्रंथ।
मद्यहि के परकास सों, लखत धरम को पंथ॥
मद पी विधि जग को करत, पालत हरि करि पान।
मद्यहि पी कै नाश सब, करत शंभु भगवान॥
विष्णु बारुणी, पोर्ट पुरुषोत्तम, मद्य मुरारि।
शांपिन शिव गौड़ी गिरिश, ब्रांडी ब्रह्म बिचारि॥
मेरी तो धन बुद्धि बल, कुल लज्जा पति गेह।
माय बाप सुत धर्म सब, मदिरा ही न सँदेह॥
सोक-हरन आनँद-करन, उमगावन सब गात।
हरि मैं तप-बिनु लय-करनि, केवल मद्य लखात॥
सरकारहि मंजूर जो मेरो होत उपाय।
तो सब सों बढ़ि मद्य पै देती कर बैठाय॥
हमहीं कों या राज की, परम निसानी जान।
कीर्ति-खंभ सी जग गड़ी, जब लौं थिर ससि भान॥
राजमहल के चिह्न नहिं, मिलिहैं जग इत कोय।
तबहू बोतल टूक बहु, मिलिहैं कीरति होय॥

हमारी प्रवृत्ति के हेतु कुछ यत्न करने की आवश्यकता नहीं। मनु

पुकारते हैं 'प्रवृत्तिरेषा भूतानां' और भागवत में कहा है '*लोके व्यवाया-मिषमद्यसेवा नित्यास्ति जंतोः।*' उस पर भी वर्त्तमान समय की सभ्यता की तो मैं मुख्य मूलसूत्र हूँ। पंच विषयेंद्रियों के सुखानुभव मेरे कारण द्विगुणित हो जाते हैं। संगीत-साहित्य की तो एकमात्र जननी हूँ। फिर ऐसा कौन है जो मुझसे विमुख हो?

(गाती है)

(राग काफी, धनाश्री, का मेल, ताल धमार)

मदवा पीले पागल जोबन बीत्यौ जात।
बिनु मद जगत सार कछु नाहीं मान हमारी बात॥
पी प्याला छक छक आनँद से नितहि साँझ और प्रात।
झूमत चल डगमगी चाल से मारि लाज को लात॥
हाथी मच्छड़, सूरज जुगनू जाके पिये लखात।
ऐसी सिद्धि छोड़ि मन मूरख काहे ठोकर खात॥

(राजा को देखकर) महाराज! कहिए क्या हुक्म है?

भारत दु०—हमने बहुत से अपने वीर हिंदुस्तान में भेजे हैं परंतु मुझको तुमसे जितनी आशा है उतनी और किसी से नहीं है। जरा तुम भी हिंदुस्तान की तरफ जाओ और हिंदुओं से समझो तो।

मदिरा—हिंदुओं के तो मैं मुद्दत से मुँहलगी हूँ, अब आपकी आज्ञा से और भी अपना जाल फैलाऊँगी और छोटे-बड़े सब के गले का हार बन जाऊँगी। [जाती है

(रंगशाला के दीपों में से अनेक बुझा दिए जायँगे)

(अंधकार का प्रवेश)

(आँधी आने की भाँति शब्द सुनाई पड़ता है)

अंधकार—(गाता हुआ स्खलित नृत्य करता है)

(राग काफी)

जै जै कलियुग राज की, जै महामोह महराज की।
अटल छत्र सिर फिरत थाप जग मानत जाके काज की॥
कलह अविद्या मोह मूढ़ता सबै नास के साज की॥

हमारा सृष्टि-संहार-कारक भगवान् तमोगुण जी से जन्म है। चोर, उलूक और लंपटों के हम एकमात्र जीवन हैं। पर्वतों की गुहा, शोकितों के नेत्र, मूर्खों के मस्तिष्क और खलों के चित्त में हमारा निवास है। हृदय के और प्रत्यक्ष, चारों नेत्र हमारे प्रताप से बेकाम हो जाते हैं। हमारे दो स्वरूप हैं, एक आध्यात्मिक और एक आधि-भौतिक, जो लोक में अज्ञान और अँधेरे के नाम से प्रसिद्ध हैं। सुनते हैं कि भारतवर्ष में भेजने को मुझे मेरे परम पूज्य मित्र दुर्दैव महाराज ने आज बुलाया है। चलें देखें क्या कहते हैं (आगे बढ़कर) महाराज की जय हो, कहिए, क्या अनुमति है ?

भारतदु०—आओ मित्र! तुम्हारे बिना तो सब सूना था। यद्यपि मैंने अपने बहुत से लोग भारतविजय को भेजे हैं पर तुम्हारे बिना सब निर्बल हैं। मुझको तुम्हारा बड़ा भरोसा है, अब तुमको भी वहाँ जाना होगा।

अंध०—आपके काम के वास्ते भारत क्या वस्तु है, कहिए मैं विलायत जाऊँ।

भारत दु०—नहीं, विलायत जाने का अभी समय नहीं, अभी वहाँ त्रेता, द्वापर है।

अंध०—नहीं, मैंने एक बात कही। भला जब तक वहाँ दुष्टा विद्या का प्राबल्य है, मैं वहाँ जाही के क्या करूँगा! गैस और मैगनीशिया से मेरी प्रतिष्ठा भंग न हो जायगी।

भारतदु०—हाँ, तो तुम हिंदुस्तान में जाओ और जिसमें हमारा हित हो सो करो। बस "बहुत बुझाइ तुमहिं का कहऊँ, परम चतुर मैं जानत अहऊँ।"

अंध०—बहुत अच्छा, मैं चला। बस जाते ही देखिए क्या करता हूँ।

(नेपथ्य में बैतालिक गान और गीत की समाप्ति में क्रम से पूर्ण अंधकार और पटाक्षेप)

निहचै भारत को अब नास।
जब महराज विमुख उनसों तुम निज मति करी प्रकास ॥

अब कहुँ सरन तिन्हें नहिं मिलिहै ह्वैहै सब बल चूर।
बुद्धि विद्या धन धान सबै अब तिनको मिलिहैं धूर॥
अब नहिं राम धर्म अर्जुन नहिं शाक्यसिंह अरु व्यास।
करिहै कौन पराक्रम इनमें को दैहे अब आस॥
सेवाजी रनजीतसिंह हूँ अब नहिं बाकी जौन।
करिहैं कछू नाम भारत को अब तो सब नृप मौन॥
वही उदैपुर जैपुर रीवाँ पन्ना आदिक राज।
परबस भए न सोच सकहिं कछु करि निज बल बेकाज॥
अँगरेजहु को राज पाइकै रहे कूढ़ के कूढ़।
स्वारथ-पर विभिन्न-मति-भूले हिंदू सब ह्वै मूढ़॥
जग के देस बढ़त बदि-बदि के सब बाजी जेहि काल।
ताहू समय रात इनको है ऐसे ये बेहाल॥
छोटे चित्त अति भीरु बुद्धि मन चंचल बिगत उछाह।
उदर-भरन-रत, ईस-बिमुख सब भए प्रजा नरनाह॥
इनसों कछू आस नहिं ये तो सब बिधि बुधि-बल-हीन।
बिना एकता-बुद्धि-कला के भए सबहि बिधि दीन॥
बोझ लादि कै पैर छानि कै निज-सुख करहु प्रहार।
ये रासभ से कछु नहिं कहिहैं मानहु छमा-अगार॥
"हित अनहित पशु पंक्षी जाना" पै ये जानहिं नाहिं।
भूले रहत आपुने रँग मैं फँसे मूढ़ता माहिं॥
जे न सुनहिं हित, भलो करहिं नहिं तिनसों आसा कौन।
डंका दै निज सैन साजि अब करहु उतै सब गौन॥

(जवनिका गिरती है)

पाँचवाँ अंक

स्थान-किताबखाना

(सात सभ्यों की एक छोटी सी कमेटी; सभापति चक्करदार टोपी पहने, चश्मा लगाए, छड़ी लिए; छः सभ्यों में एक बंगाली, एक महाराष्ट्र, एक अखबार हाथ में लिए एडिटर, एक कवि और दो देशी महाशय)

सभापति—(खड़े होकर) सभ्यगण! आज की कमेटी का मुख्य उद्देश्य यह है कि भारतदुर्दैव की, सुना है कि, हम लोगों पर चढ़ाई है। इस हेतु आप लोगों को उचित है कि मिलकर ऐसा उपाय सोचिए कि जिससे हम लोग इस भावी आपत्ति से बचें। जहाँ तक हो सके अपने देश की रक्षा करना ही हम लोगों का मुख्य धर्म है। आशा है कि आप सब लोग अपनी-अपनी अनुमति प्रगट करेंगे। (बैठ गए, करतल-ध्वनि)।

बंगाली—(खड़े होकर) सभापति साहब जो बात बोला सो बहुत ठीक है। इसका पेशतर कि भारतदुर्दैव हम लोगों का शिर पर आ पड़े कोई उसके परिहार का उपाय शोचना अत्यंत आवश्यक है किंतु प्रश्न एई है जे हम लोग उसका दमन करने शाकता कि हमारा बीज्जोंबल के बाहर का बात है। क्यों नहीं शाकता? अलबत्त शकैगा, परंतु जो शब लोग एक मत्त होगा। (करतलध्वनि) देखो हमारा बंगाल में इसका अनेक उपाय शाधन होते हैं। ब्रिटिश इंडियन असोसिएशन लोग इत्यादि अनेक शभा भी होते हैं। कोई थोड़ा बी बात होता हम लोग मिल के बड़ा गोल करते। गवर्नमेंट तो केवल गोलमाल शे भय खाता। और कोई तरह नहीं शोनता। ओ हुआँ का अखबार वाला सब एक बार ऐसा शोर करता कि गवर्नमेंट को अलबत्त शुनने होता। किंतु हेंयाँ, हम देखते हैं कोई कुछ नहीं बोलता। आज शब आप सभ्य लोग एकत्र हैं, कुछ उपाय इसका अवश्य शोचना चाहिए। (उपवेशन)

प० देशी—(धीरे से) यहीं, मगर जब त: [illegible] हैं तभी तक। बाहर निकले कि फिर कुछ नहीं!

दू० देशी—(धीरे से) क्यों भाई साहब, इस कमेटी में आने से कमिश्नर हमारा नाम तो दरबार से खारिज न कर देंगे?

एडिटर—(खड़े होकर) हम अपने प्राणपण से भारतदुर्दैव को हटाने को तैयार हैं। हमने पहिले भी इस विषय में एक बार अपने पत्र में लिखा था परंतु यहाँ तो कोई सुनता ही नहीं। अब जब सिर पर आफत आई तो आप लोग उपाय सोचने लगे। भला अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है जो कुछ सोचना हो जल्द सोचिए। (उपवेशन)

कवि—(खड़े होकर) मुहम्मदशाह से भाँड़ों ने दुश्मन की फौज से बचने का एक बहुत उत्तम उपाय कहा था। उन्होंने बतलाया कि नादिरशाह के मुकाबले में फौज न भेजी जाय। जमना-किनारे कनात खड़ी कर दी जायँ, कुछ लोग चूड़ी पहिने कनात के पीछे खड़े रहें। जब फौज इस पार उतरने लगे, कनात के बाहर हाथ निकाल कर उँगली चमकाकर कहें "मुए इधर न आइयो इधर जनाने हैं"। बस सब दुश्मन हट जायँगे। यही उपाय भारतदुर्दैव से बचने को क्यों न किया जाय।

बंगाली—(खड़े होकर) अलबत्त, यह भी एक उपाय है किंतु असभ्यगण आकर जो स्त्री लोगों का विचार न करके सहसा कनात को आक्रमण करेगा तो? (उपवेशन)

एडि०—(खड़े होकर) हमने एक दूसरा उपाय सोचा है, एडूकेशन की एक सेना बनाई जाय। कमेटी की फौज। अखबारों के शस्त्र और स्पीचों के गोले मारे जायँ। आप लोग क्या कहते हैं? (उपवेशन)

दू० देशी—मगर जो हाकिम लोग इससे नाराज हों तो? (उपवेशन)

बंगाली—हाकिम लोग काहे को नाराज होगा। हम लोग शदा चाहता कि अंगरेज़ों का राज्य उत्सन्न न हो, हम लोग केवल अपना बचाव करता। (उपवेशन)

महा०—परंतु इसके पूर्व यह होना अवश्य है कि गुप्त रीति से यह बात जाननी कि हाकिम लोग भारतदुर्दैव की सैन्य से मिल तो नहीं जायँगे।

दू० देशी—इस बात पर बहस करना ठीक नहीं। नाहक कहीं लेने के देने न पड़ें, अपना काम देखिए। (उपवेशन और आप ही आप) हाँ, नहीं तो अभी कल ही झाड़बाजी होय।

महा०—तो सार्वजनिक सभा का स्थापन करना। कपड़ा बीनने की कल मँगानी। हिंदुस्तानी कपड़ा पहिनना। यह भी सब उपाय हैं।

दू० देशी—(धीरे से) बनात छोड़कर गंजी पहिरेंगे, हें हें।

एडि०—परंतु अब समय थोड़ा है जल्दी उपाय सोचना चाहिए।

कवि—अच्छा तो एक उपाय यह सोचो कि सब हिंदू मात्र अपना फैशन छोड़कर कोट-पतलून इत्यादि पहिरें जिसमें जब दुर्दैव की फौज आवे तो हम लोगों को योरोपियन जानकर छोड़ दे।

प० देशी—पर रंग गोरा कहाँ से लावेंगे?

बंगाली—हमारा देश में भारतउद्धार नामक एक नाटक बना है। उसमें अंगरेज़ों को निकाल देने का जो उपाय लिखा, सोई हम लोग दुर्दैव का वास्ते काहे न अवलंबन करें। ओ लिखता पाँच जन बंगाली मिल के अँगरेज़ों को निकाल देगा। उसमें एक तो पिशान लेकर स्वेज का नहर पाट देगा। दूसरा बाँस काट-काट के पिवरी नामक जलयंत्र विशेष बनावेगा। तीसरा उस जलयंत्र से अँगरेजों की आँख में धूर और पानी डालेगा।

महा०—नहीं नहीं, इस व्यर्थ की बात से क्या होना है। ऐसा उपाय करना जिससे फलसिद्धि हो।

प० देशी—(आप ही आप) हाय! यह कोई नहीं कहता कि सब लोग मिलकर एक-चित्त हो विद्या की उन्नति करो, कला सीखो, जिससे वास्तविक कुछ उन्नति हो। क्रमशः सब कुछ हो जायगा।

एडि०—आप लोग नाहक इतना सोच करते हैं, हम ऐसे-ऐसे आर्टिकिल लिखेंगे कि उसके देखते ही दुर्दैव भागेगा।

कवि—और हम ऐसी ही ऐसी कविता करेंगे।

प० देशी—पर उनके पढ़ने का और समझने का अभी संस्कार किसको है?

(नेपथ्य में से)

भागना मत, अभी मैं आती हूँ।

(सब डरके चौकन्ने से होकर इधर-उधर देखते हैं

दू० देशी—(बहुत डरकर) बाबा रे, जब हम कमेटी में चले थे तब पहिले ही छींक हुई थी। अब क्या करें। (टेबुल के नीचे छिपने का उद्योग करता है)।

(डिसलायलटी * का प्रवेश)

सभापति—(आगे से ले आकर बड़े शिष्टाचार से) आप क्यों यहाँ तशरीफ लाई हैं? कुछ हम लोग सर्कार के विरुद्ध किसी प्रकार की सम्मति करने को नहीं एकत्र हुए हैं। हम लोग अपने देश की भलाई करने को एकत्र हुए हैं।

डिसलायलटी—नहीं, नहीं, तुम सब सर्कार के विरुद्ध एकत्र हुए हो, हम तुमको पकड़ेंगे।

बंगाली—(आगे बढ़कर क्रोध से) काहे को पकड़ेगा, कानून कोई वस्तु नहीं है। सर्कार के विरुद्ध कौन बात हम लोग बोला? व्यर्थ का विभीषिका!

डिस०—हम क्या करें, गवर्नमेंट की पालिसी यही है। कवि-वचन-सुधा नामक पत्र में गवर्नमेंट के विरुद्ध कौन बात थी? फिर क्यों उसके पकड़ने को हम भेजे गए? हम लाचार हैं।

दू० देशी—(टेबुल के नीचे से रोकर) हम नहीं, हम नहीं, हम तमाशा देखने आए थे।

महा०—हाय-हाय! यहाँ के लोग बड़े भीरु और कापुरुष हैं। इसमें भय की कौन बात है! कानूनी है।

सभा०—तो पकड़ने का आपको किस कानून से अधिकार है?

डिस०—इँगलिश पालिसी नामक ऐक्ट के हाकिमेच्छा नामक दफा से।

महा०—परंतु तुम?

दू० देशी—(रोकर) हाय-हाय! भटवा तुम कहता है अब मरे।

---

* पुलिस की वर्दी पहिने।

महा०—पकड़ नहीं सकतीं, हमको भी दो हाथ दो पैर हैं। चलो हम लोग तुम्हारे संग चलते हैं, सवाल-जवाब करेंगे।

बंगाली—हाँ चलो, ओ का बात—पकड़न नहीं शेकता।

सभा०—(स्वगत) चेयरमैन होने से पहिले हमी को उत्तर देना पड़ेगा, इसीसे किसी बात में हम अगुआ नहीं होते।

डिस०—अच्छा चलो। (सब चलने की चेष्टा करते हैं)।

(जवनिका गिरती है)

छठा अंक

स्थान गंभीर वन का मध्यभाग

(भारत एक वृक्ष के नीचे अचेत पड़ा है)

(भारतभाग्य का प्रवेश)

भारतभाग्य—(गाता हुआ—राग चैती गौरी)

जागो जागो रे भाई !
सोअत निसि बैस गँवाई जागो जागो रे भाई ॥
निसि की कौन कहै दिन बीत्यो काल राति चलि आई।
देखि परत नहिं हित-अनहित कछु परे बैरि-बस जाई ॥
निज उद्धार पंथ नहिं सूझत सीस धुनत पछिताई।
अबहूँ चेति, पकरि राखो किन जो कछु बची बड़ाई ॥
फिर पछिताए कछु नहिं ह्वैहै रहि जैहौ मुँह बाई।
जागो जागो रे भाई ॥

(भारत को जगाता है और भारत जब नहीं जागता तब अनेक यत्न से फिर जगाता है, अंत में हारकर उदास होकर)।

हाय ! भारत को आज क्या हो गया है? क्या निस्संदेह परमेश्वर इससे ऐसा ही रूठा है? हाय क्या अब भारत के फिर वे दिन न आवेंगे। हाय यह वही भारत है जो किसी समय सारी पृथ्वी का शिरोमणि गिना जाता था?

भारत के भुज-बल जग रक्षित।
भारत विद्या लहि जग सिच्छित ॥
भारत तेज जगत बिस्तारा।
भारत भय कँपत संसारा ॥
जाके तनिकहिं भौंह हिलाए।
थर-थर कंपत नृप डरपाए ॥

जाके जय की उज्ज्वल गाथा।
गावत सब महि मंगल साथा॥
भारत किरिन जगत उँजियारा।
भारत जीव जिअत संसारा॥
भारत वेद कथा इतिहासा।
भारत वेद प्रथा परकासा॥
फिनिक मिसिर सीरीय युनाना।
भे पंडित लहि भारत दाना॥
रह्यौ रुधिर जब आरज-सीसा।
ज्वलित अनल समान अवनीसा॥
साहस बल इन सम कोउ नाहीं।
तबै रह्यौ महिमंडल माहीं॥
कहा करी तकसीर तिहारी।
रे बिधि रुष्ट याहि की बारी॥
सबै सुखी जग के नर-नारी।
रे विधना भारत हि दुखारी॥
हाय रोम तू अति बड़भागी।
बर्बर तोहि नास्यो जय लागी।
तोड़े कीरति-थंभ अनेकन।
ढाहे गढ़ बहु करि प्रण टेकन॥
मंदिर महलनि तोरि गिराए।
सबै चिह्न तुव धूरि मिलाए॥
कछु न बची तुव भूमि निसानी।
सो बरु मेरे मन अति मानी॥
भारत भाग न जात निहारे।
थाप्यो पग ता सीस उघारे॥
तोरयो दुर्गन महल ढहायो।
तिनहीं में निज गेह बनायो॥

ते कलंक सब भारत केरे।
ठाढ़े अजहूँ लखो घनेरे॥
काशी प्राग अयोध्या नगरी।
दीन रूप सम ठाढ़ी सगरी॥
चंडालहु जेहि निरखि घिनाई।
रहीं सबै भुव मुँह मसि लाई॥
हाय पंचनद हा पानीपत।
अजहुँ रहे तुम धरनि बिराजत॥
हाय चितौर निलज तू भारी।
अजहुँ खरो भारतहि मँझारी॥
जा दिन तुव अधिकार नसायो।
सो दिन क्यों नहिं धरनि समायो॥
रह्यो कलंक न भारत नामा।
क्यों रे तू बारानसि धामा॥
सब तजि कै भजि कै दुखभारो।
अजहुँ बसत करि भुव मुख कारो॥
अरे अग्रवन तीरथराजा।
तुमहुँ बचे अबलौं तजि लाजा॥
पापिनि सरजू नाम धराई।
अजहूँ बहत अवधतट जाई॥
तुम में जल नहिं जमुना गंगा।
बढ़हु बेग करि तरल तरंगा॥
धोवहु यह कलंक की रासी।
बोरहु किन झट मथुरा कासी॥
कुस कन्नौज अंग अरु बंगहि।
बोरहु किन निज कठिन तरंगहि॥
बोरहु भारत भूमि सबेरे।
मिटै करक जिय की तब मेरे॥

अहो भयानक भ्राता सागर।
तुम तरंगनिधि अति बल-आगर॥
बोरे बहु गिरि बन अस्थाना।
पै बिसरे भारत हित जाना॥
बढ़हु न बेगि धाइ क्यों भाई।
देहु भरत भुव तुरत डुबाई॥
घेरि छिपावहु विंध्य हिमालय।
करहु सकल जल भीतर तुम लय॥
धोवहु भारत अपजस पंका।
मेटहु भारतभूमि कलंका॥

हाय! यहीं के लोग किसी काल में जगन्मान्य थे।

जेहि छिन बलभारे हे सबै तेग धारे।
तब सब जग धाई फेरते हे दुहाई॥
जग सिर पग धारे धावते रोस भारे।
बिपुल अवनि जीती पालते राजनीती॥
जग इन बल काँपै देखिकै चंड दापै।
सोइ यह प्रिय मेरे ह्वै रहे आज चेरे॥
ये कृष्ण-बरन जब मधुर तान।
करते अमृतोपम वेद-गान॥
तब मोहत सब नर-नारि-वृन्द।
सुनि मधुर बरन सज्जित सुछंद॥
जग के सबही जन धारि स्वाद।
सुनते इनहीं को बीन नाद॥
इनके गुन होतो सबहि चैन।
इनहीं कुल नारद तानसैन॥
इनहीं के क्रोध किए प्रकास।
सब काँपत भूमंडल अकास॥
इनहीं के हुंकृति शब्द घोर।

गिरि काँपत हे सुनि चारु ओर।।
जब लेत रहे कर में कृपान।
इनहीं कहँ हो जग तृन समान।।
सुनि कै रनबाजन खेत माहिं।
इनहीं कहँ हो जिय संक नाहिं।।
याही भुव महँ होत है हीरक आम कपास।
इतही हिमगिरि गंगजल काव्य गीत परकास।।
जाबाली जैमिनि गरग पातंजलि सुकदेव।
रहे भारतहि अंक में कबहिं सबै भुवदेव।
याही भरत मध्य में रहे कृष्ण मुनि व्यास।
जिनके भारत-गान सों भारत-बदन प्रकास।।
याही भारत में रहे कपिल सूत दुरवास।
याही भारत में भए शाक्य सिंह संन्यास।।
याही भारत में गए मनु भृगु आदिक होय।
तब तिनसों जग में रह्यो घृना करत नहिं कोय।।
जासु काव्य सों जगत मधि अब लौं ऊँचो सीस।
जासु राज बल धर्म की तृषा करहिं अवनीस।।
सोई व्यास अरु राम के बंस सबै संतान।
ये मेरे भारत भरे सोइ गुन ,रूप समान।।
सोई वंस रुधिर वही सोई मन बिस्वास।
वही वासना चित वही आसय वही विलास।।
कोटि कोटि ऋषि पुन्य तन कोटि कोटि अति सूर।
कोटि कोटि बुध मधुर कवि मिले यहाँ की धूर।।
सोइ भारत की आज यह भई दुरदसा हाय।
कहा करें कित जायँ नहिं सूझत कछू उपाय।।

(भारत को फिर उठाने की अनेक चेष्टा करके उपाय निष्फल होने पर रोकर) हा! भारतवर्ष को ऐसी मोहनिद्रा ने घेरा है कि अब इसके उठने की आशा नहीं। सच है, जो जान-बूझकर सोता है उसे कौन जगा

सकेगा ? हा दैव ! तेरे विचित्र चरित्र हैं, जो कल राज करता था वह आज जूते में टाँका उधार लगवाता है। कल जो हाथी पर सवार फिरते थे आज नंगे पाँव बन-बन की धूल उड़ाते फिरते हैं। कल जिनके घर लड़के-लड़कियों के कोलाहल से कान नहीं दिया जाता था, आज उनका नाम लेवा और पानी देवा कोई नहीं बचा और कल जो घर अन्न धन पूत लक्ष्मी हर तरह से भरे-पूरे थे आज उन घरों में तूने दिया बालनेवाला भी नहीं छोड़ा।

हा ! जिस भारतवर्ष का सिर व्यास, वाल्मीकि, कालिदास, पाणिनि, शाक्यसिंह, बाणभट्ट प्रभृति कवियों के नाममात्र से अब भी सारे संसार से ऊँचा है, उस भारत की यह दुर्दशा ! जिस भारतवर्ष के राजा चंद्रगुप्त और अशोक का शासन रूम-रूस तक माना जाता था, उस भारत की यह दुर्दशा ! जिस भारत में राम, युधिष्ठिर, नल, हरिश्चंद्र, रंतिदेव, शिवि इत्यादि पवित्र चरित्र के लोग हो गए हैं उसकी यह दशा ! हाय, भारत भैया, उठो ! देखो विद्या का सूर्य पश्चिम से उदय हुआ चला आता है। अब सोने का समय नहीं है। अँगरेज का राज्य पाकर भी न जगे तो कब जागोगे। मूर्खों के प्रचंड शासन के दिन गए, अब राजा ने प्रजा का स्वत्व पहिचाना। विद्या की चरचा फैल चली, सबको सब कुछ कहने-सुनने का अधिकार मिला, देश-विदेश मे नई नई विद्या और कारीगरी आई। तुमको उस पर भी वही सीधी बातें, भाँग के गोले, ग्रामगीत, वही बाल्यविवाह, भूत-प्रेत की पूजा, जन्मपत्री की विधि ! वही थोड़े में संतोष, गप हाँकने में प्रीति और सत्यानाशी चालें ! हाय अब भी भारत की यह दुर्दशा ! अरे अब क्या चिता पर सम्हलेगा। भारत भाई ! उठो, देखो, अब यह दुःख नहीं सहा जाता, अरे कब तक बेसुध रहोगे ? उठो, देखो, तुम्हारी संतानों का नाश हो गया। छिन्न-भिन्न होकर सब नरक की यातना भोगते हैं, उसपर भी नहीं चेतते। हाय ! मुझसे तो अब यह दशा नहीं देखी जाती। प्यारे जागो। (जगाकर और नाड़ी देखकर) हाय इसे तो बड़ा ही ज्वर चढ़ा है ! किसी तरह होश में नहीं आता। हा भारत !

तेरी क्या दशा हो गई! हे करुणासागर भगवान् इधर भी दृष्टि कर। हे भगवती राजराजेश्वरी, इसका हाथ पकड़ो। (रोकर) अरे कोई नहीं जो इस समय अवलंब दे। हा! अब मैं जी के क्या करूँगा? जब भारत ऐसा मेरा मित्र इस दुर्दशा में पड़ा है और उसका उद्धार नहीं कर सकता, तो मेरे जीने पर धिक्कार है! जिस भारत का मेरे साथ अब तक इतना संबंध था उसकी ऐसी दशा देखकर भी में जीता रहूं तो बड़ा कृतघ्न हूं! (रोता है) हा विधाता, तुझे यही करना था! (आतंक मे) छि: छि: इतना क्लैव्य क्यों? इस समय यह अधीरजपना! बस, अब धैर्य! (कमर से कटार निकालकर) भाई भारत! में तुम्हारे ऋण से छूटता हूँ। मुझसे वीरों का कर्म नहीं हो सकता। इसीसे कातर की भाँति प्राण देकर उऋण होता हूँ। (ऊपर हाथ उठाकर) हे सर्व्वांतर्यामी! हे परमेश्वर! जन्म-जन्म मुझे भारत सा भाई मिले! जन्म जन्म गंगा-यमुना के किनारे मेरा निवास हो!

(भारत का मुँह चूमकर और गले लगाकर)

भैया, मिल लो, अब मैं बिदा होता हूं। भैया, हाथ क्यों नहीं उठाते? मैं ऐसा बुरा हो गया कि जन्म भर के वास्ते मैं बिदा होता हूँ तब भी ललककर मुझसे नहीं मिलते। मैं ऐसा ही अभागा हूँ तो ऐसे अभागे जीवन ही से क्या, बस यह लो। (कटार का छाती में आघात और साथ ही जवनिका पतन)

टिप्पणी

मंगलाचरण—मंगलाचरण या नांदी एक प्रकार की स्तुति है जो विघ्न-शांति के लिए की जाती है। भारतीय नाटच-शास्त्र के अनुसार प्रत्येक नाटच-कृति का प्रारंभ और अंत ऐसे ही मंगल वाक्यों से माना गया है। मंगलाचरण या नांदी पूर्वरंग नामक नाटकीय भूमिका के अंतर्गत है। मंगलाचरण तीन प्रकार का माना जाता है—(१) वस्तुनिर्देशात्मक (२) नमस्कारात्मक और (३) आशीर्वादात्मक। जहाँ 'जय' शब्द का प्रयोग होता है वहाँ आशीर्वादात्मक मंगलाचरण समझना चाहिए। नाटचकृति के अंत में आने वाले मंगल-पाठ को 'भरत-वाक्य' कहते हैं।

'भारत-दुर्दशा' का यह मंगलाचरण केवल स्तुति के रूप में है, न कि प्राचीन परंपरा के अनुसार नाटकीय भूमिका के अंग के रूप में, क्योंकि इस मंगल-पाठ के अनंतर सूत्रधार-प्रवेश आदि कुछ भी नहीं है।

सतजुग—भारतीय पौराणिक परंपरा के अनुसार माने जाने वाले चार युगों में से पहला युग। अन्य युग हैं—त्रेता, द्वापर और कलि। चारों मिलाकर चतुर्युग के नाम से प्रसिद्ध हैं। देवताओं के १२००० वर्षों में चारों युग एकबार बीत जाते हैं।

देवताओं के वर्ष	मनुष्यों के वर्ष	
४०००	१७२८०००	= सतयुग
३०००	१२९६०००	= त्रेतायुग
२०००	८६४०००	= द्वापरयुग
१०००	४३२०००	= कलियुग

क्रमशः ८००, ६००, ४०० और २०० वर्षों के सध्यांश होते हैं और १००० चतुर्युग जब पूर्ण हो जाते हैं तो ब्रह्मा जी का एक दिन होता है।

म्लेच्छ—सीमा के पार रहनेवाले लोग अथवा ऐसी जाति जिसमें भारतीय वर्णाश्रम धर्म प्रचलित न हो। 'यवन' शब्द की भाँति 'म्लेच्छ' शब्द का प्रयोग भी विभिन्न समयों में विभिन्न जातियों के लिए हुआ है।

बाहर से आए हुए जिन आक्रमणकारियों ने क्रूरता और अत्याचार का व्यवहार किया उन्हीं को इन नामों से विभूषित किया गया। हूण भी म्लेच्छ कहलाते थे और आगे चल कर मुसलमान और अँगरेज़ भी म्लेच्छ कहलाए।

अचार—आचार, रहन-सहन।

कर—हाथ।

कृष्ण—श्याम वर्णवाला।

कल्कि—विष्णु के दस अवतारों में से अंतिम अवतार। रंग श्याम, अश्वारूढ़ और हाथ में तलवार लिए हुए। संभल (मुरादाबाद) में एक कुमारी कन्या के गर्भ से यह अवतार होगा। यह अवतार कलिकुल, वेदविमुखों, पाखंडियों और म्लेच्छादि का ध्वंस कर पृथ्वी का उद्धार करेगा। एक 'कल्कि पुराण' भी प्रसिद्ध है। भारतेन्दु की इस कृति मेंक लि की सेना का उल्लेख हुआ है। उसे नष्ट करने के लिए कलि-काल में कल्कि का स्मरण करना उचित ही है।

अवतार—विष्णु के अवतारों का प्रधान कारण यह बताया जाता है कि एक बार विष्णु ने भृगु मुनि के यज्ञ की रक्षा करने की प्रतिज्ञा की। जब भृगु यज्ञ करने लगे तो इसी बीच में देवताओं और दैत्यों का संग्राम होने लगा। तब इन्द्र की रक्षा के लिए विष्णु यज्ञ छोड़ कर चले गए और पापी दानवों ने भृगु का यज्ञ विध्वंस कर डाला। उस समय भृगु ने विष्णु को शाप दिया कि तुम मलिन हो मर्त्यलोक में दस बार अवतार लो और मनुष्यों की भाँति नाना प्रकार के दुःख भोगो। तब से जनार्दन मर्त्यलोक में जन्म लेकर नाना प्रकार के कर्मों का फल भोगते हैं। विष्णु के इन अवतारों के नाम हैं—मत्स्य, वाराह, कूर्म, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि।

पहिला अंक

अंक—नाटकीय कथावस्तु के विभाजन के नाम अंक है।

बीथी (वीथी)—मार्ग, सड़क।

योगी—भारतीय संस्कृति का प्रतीक। भारतीय अधोगति का वर्णन इसलिए योगी के ही मुख से कराया है।

लावनी—एक गान। प्रसिद्ध लावनी-रचयिता काशीगिरि बनारसी परमहंस आशक हक्कानी (उन्नीसवीं शती उत्तरार्द्ध) लावनी की उत्पत्ति के विषय में लिखते हैं:—

'कोई इसको लावनी कहते हैं और कोई मरहटी वा ख्याल कहते हैं। असल में इसका बनाना और गाना दक्षिण से उत्पन्न है और इसके दो कर्ता हुए एक का नाम तुकनगिरि और दूसरे का नाम शाहअली था। उन्होंने दो मत खड़े किये तुर्रा और कलँगी। तुकनगिर तुर्रे को बड़ा कहते थे और शाहअली कलँगी को बड़ा रखते थे। आपस में विवाद किया करते थे और अपना अपना पन्थ उन्होंने चलाया। यहाँ तक कि आज तांई उनके मतवाले बहुत से लोग इस देश में भी बनाते गाते हैं उनमें पढ़े-लिखे भी हैं......'

इसकी प्रत्येक पंक्ति में २२-२२ मात्राएँ हैं।

रूप, रंग, रस—रूप=सूरत, शक्ल। रंग=वर्ण। रस=सारतत्व, आनंद। अर्थात् भारतवर्ष जो सबसे उन्नतिशील हो सभ्यता के मार्ग पर अग्रसर हुआ।

भीनो—भर गया। रसभीनो—शब्दार्थ, यौवनारंभ।

शाक्य—एक प्राचीन क्षत्रिय जाति जो नैपाल की तराई में बसती थी। शाक्यवंशीय कुमार सिद्धार्थ जो गौतम बुद्ध के नाम से प्रसिद्ध हुए।

हरिश्चंद्र—सूर्यवंशी सत्यव्रत के पुत्र। उनके पुत्र नहीं था। उन्होंने गुरु वशिष्ठ के आदेशानुसार वरुण की आराधना की। वरुण ने इस शर्त पर पुत्र देना स्वीकार किया कि उसकी पशु-रूप में बलि दी जाय।

पुत्र की उत्पत्ति हुई और वह अपने बारे में कथा सुन भाग गया। वरुण के शाप से राजा को जलोदर रोग हो गया। अंत में शुनःशेप नामक खरीदे हुए बालक को लेकर यज्ञ करना निश्चित हुआ। किन्तु विश्वामित्र द्वारा बताए गए मंत्र से वरुण प्रसन्न हुए और बिना वध किए यज्ञ पूरा हो गया। राजा स्वस्थ हो गया और पुत्र भी वापिस चला आया।

सूर्यवंश का एक और अट्ठाईसवाँ राजा हरिश्चन्द्र हुआ जो त्रिशंकु का पुत्र था और रामचन्द्र से ३५ पीढ़ी पहले हुआ था। यह राजा अत्यन्त दानी, कष्ट सहिष्णु, न्याय-प्रिय और सत्यवादी प्रसिद्ध हुआ। भारतेन्दु जी का संकेत इसी राजा हरिश्चन्द्र की ओर है। 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक भी भारतेन्दु ने लिखा था। इस राजा के चरित्र की ओर वे विशेष रूप से आकृष्ट थे।

नहुष—अयोध्या का एक प्राचीन इक्ष्वाकुवंशीय राजा जो अंबरीष के पुत्र और ययाति के पिता थे।

ययाति—राजा नहुष के पुत्र जिनका विवाह शुक्राचार्य की कन्या देवयानी से हुआ था।

राम—दशरथ-नंदन राम और रामायण के नायक। विष्णु के अवतार और वीरता, मर्यादा तथा शील के लिए प्रसिद्ध।

युधिष्ठिर—धर्म से उत्पन्न पाण्डु और कुंती के ज्येष्ठ पुत्र। अपनी सत्य-निष्ठा के लिए प्रसिद्ध ।

वासुदेव—वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण। चौसठों कलावतार, दुष्टदलन और गीता का उपदेश देने वाले।

सर्याती—शर्याति। (१) एक राजा का नाम जिसकी कन्या 'सुकन्या' महर्षि च्यवन को ब्याही गई थी। (२) भागवत के अनुसार वैवस्वत मनु के एक पुत्र का नाम।

भीम—वायु से उत्पन्न पाण्डु और कुंती के द्वितीय पुत्र। अपने शारीरिक बल के लिए प्रसिद्ध।

करन—कर्ण। कुंती की कुमारी अवस्था में सूर्य से उत्पन्न और बाद में

सूत द्वारा पालित-पोषित। दान और वीरता के लिए प्रसिद्ध।

अर्जुन—इन्द्र से उत्पन्न पांडु और कुंती के तृतीय पुत्र। श्रीकृष्ण के सखा और प्रसिद्ध गाण्डीवधारी धनुर्धर।

राती—रँगी हुई, छाई हुई।

वैदिक-जैन—वैदिक मतावलंबियों और जैन मतावलंबियों में काफ़ी मतभेद रहता था। जैन धर्म के प्रवर्तक महावीर स्वामी माने जाते हैं।

डुबाई पुस्तक सारी—समस्त धार्मिक ग्रन्थों को कलंक लगा दिया, उनकी मर्यादा नष्ट कर दी।

करि कलह.....भारी—आपस की फूट से विदेशी आक्रमणकारियों को आक्रमण करने के लिए प्रलोभन दिया।

अंध-पंगु—ज्ञान के प्रकाश से हीन और गतिहीन (जिनकी गति अवरुद्ध हो गई हो)।

अँगरेज राज....स्वारी—अंगरेज़ों के आने से नवीन शिक्षा का सूत्रपात हुआ और फलतः सुधारवादी धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक आन्दोलन उठ खड़े हुए और भारतीय नवोत्थान का जन्म हुआ। नवोत्थान की भावना से प्रेरित हो भारतवासी अपने जीवन का पुनस्संस्कार करने लगे। लूट-मार, अपहरण आदि का निवारण हुआ। वैज्ञानिक आविष्कारों, जैसे, रेल, तार, डाक, प्रेस, नल आदि का प्रचार हुआ। इन सब कारणों से भारतीय जीवन में प्रत्यक्षतः सुख-सम्पन्नता आई। किन्तु अँगरेज़ों की पूँजीवादी-साम्राज्यवादी नीति के फलस्वरूप भारतीय धन विदेश जाने लगा और देश की निर्धनता दिन पर दिन बढ़ने लगी।

मंहगी....बिस्तारी—अँगरेज़ों की आर्थिक नीति के अतिरिक्त भारतवासी तेज़ी, दुर्भिक्ष (काल=अकाल) और विविध प्रकार की बीमारियों से भी पीड़ित रहते थे। जड़ में अँगरेज़ों की आर्थिक नीति ही थी।

टिक्कस—टैक्स।

दूसरा अंक

श्मशान. . . .पड़ी है—भारत की उजड़ी हुई अवस्था के लिए यही पीठिका उपयुक्त हो सकती थी।

कृष्णचन्द्र का दूतत्व—महाभारत-युद्ध के प्रारंभ होने से पूर्व युधिष्ठिर की ओर से श्रीकृष्ण दूत बनकर आए थे और दुर्योधन से पांडवों को केवल पाँच गाँव ही देने के लिए कहा था।

वीरोत्तम दुर्योधन—दुर्योधन दुष्ट भले ही रहा हो, किन्तु वह वीर था। गदायुद्ध में वह भीमसेन से किसी भी प्रकार कम न था। वीरोत्तम इसलिए भी कहा क्योंकि उसमें भूमि-प्रेम था। कृष्ण के दूतत्व करने पर भी उसने अपने राज्य की कण भर भूमि भी नहीं दी थी।

"शूच्यग्रं नैव दास्यामि विना युद्धेन केशव"—हे केशव! बिना युद्ध के सुई की नोंक की बराबर भी (भूमि) नहीं दूँगा।

पामर जयचन्द्र—भारत में फूट तथा कलह और फलतः विनाश का प्रतीक। कन्नौज का राजा जयचन्द्र (१२ वीं शती के लगभग अंत में)। कहा जाता है कि पृथ्वीराज द्वारा बारबार पराजित होने के फल-स्वरूप उत्पन्न वैमनस्य के कारण उसने शहाबुद्दीन गौरी को भारत पर आक्रमण करने के लिए निमंत्रण दिया था।

मातः. . . अपनाए की लाज रक्खो—यहाँ 'राजराजेश्वरी' से विक्टोरिया का तात्पर्य है। भारतेन्दु के समय में 'राजा कृष्ण समान' वाली भावना कार्य कर रही थी। भारतेन्दु ने भारत में अंगरेज़ कर्मचारियों से पीड़ित होने का उल्लेख किया है, किन्तु सम्राज्ञी के प्रति भक्ति प्रकट की है। वे चाहते थे कि जिस प्रकार इंगलैंड का नरेश इंगलैंड-निवासियों के हित की इच्छा से शासन करता है, वैसे भारतवासियों के शासन की व्यवस्था हो। इसलिए जब इंगलैंड की सम्राज्ञी ने भारत के शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली ('५७ के विद्रोह और विक्टोरिया के घोषणा-पत्र के बाद) तो उन्हें भारतवासियों के

उदय का ध्यान रखकर अपने शरण में लेने को सार्थक करना चाहिए।

दुखी मन को...बचानेवाला नहीं—अर्थात् अँगरेज़ी राज्य में, सब प्रकार की विघ्नबाधाओं और यातनाओं से मुक्त रहते हुए, विद्याध्ययन कर जीवन को सुखी बनावेंगे, किन्तु भाग्य में यह भी नहीं था।

दुखगाथ—दुःख की गाथा अर्थात् कहानी (भारत के दुर्दिन की कहानी)।

टकरावत निज माथ—अर्थात् मारा-मारा फिरता है।

छीजत—क्रमशः नष्ट होता है।

धाइ—दौड़ कर।

नेपथ्य—नृत्य, अभिनय आदि के समय परदे के भीतर का वह स्थान जहाँ अभिनेता वेश सजाते हैं। नेपथ्य से विविध प्रकार की ध्वनियाँ प्रकट की जाती हैं और सूचनाएँ दी जाती हैं।

मुँह बाए—मुँह खोले हुए या फैलाए हुए।

कौर—ग्रास।

परमेश्वर...समुद्र पार—परमेश्वर बैकुंठ में होने के कारण नहीं सुनता (सुनता तो इतनी दुर्दशा क्यों होती) और सात समुद्र पार होने के कारण राजराजेश्वरी विक्टोरिया नहीं सुनतीं (क्योंकि उनके प्रतिनिधि शासक अपने मन की करते हैं, प्रजा के हित का ध्यान नहीं रखते)।

निर्लज्जता—लज्जा का त्याग, अर्थात् अपमानित होते हुए भी मज़े से रहने की अवस्था।

आछत—रहते हुए।

एक जिंदगी...नेआमत है—नेआमत (अ०) = धन, माल। अर्थात् जीवित रहना ही एक परम लक्ष्य हो, फिर चाहे जिस अवस्था में रहना पड़े।

तीसरा अंक

भारत दुर्दैव तथा उसकी फौज—भारत जो एक समय सभ्यता के सर्वोच्च शिखर पर था उसी का आज पतन हो गया, यह दुर्दैव है। निरुद्यमता, फूट, कलह, रोग, मँहगी, अविद्या, संतोष, अपव्यय, दूसरों का अन्धानुकरण, विज्ञान का अभाव, निज भाषा और वस्तुओं के व्यवहार का अभाव आदि कारण ही दुर्दैव की फौज है।

छार-खार—खाक, धूल अर्थात् नष्ट-भ्रष्ट।

सहज—सरल, सुगम अर्थात् साधारण व्यक्ति।

राक्षस—दैत्य, दुष्ट प्राणी।

काल—अकाल, दुर्भिक्ष।

पानी उलटा कर बरसाऊँ—उलटा कर = औंधा कर अर्थात् अतिवृष्टि। इसका एक और अर्थ 'विपरीत गति से पानी बरसाना' भी हो सकता है, अर्थात् जब पानी की आवश्यकता हो तब तो अनावृष्टि और जब आवश्यकता न हो तो अतिवृष्टि।

काफिर—मुसलमानों के अनुसार उनसे भिन्न धर्म का माननेवाला। उन्होंने ही यह नाम भारतवासियों को दिया था। यह नाम भारतवासियों की दासता का प्रतीक है।

काला—यह नाम अँगरेजों का दिया हुआ है। यह भी भारत की दासता का प्रतीक है।

तोड़ूं पैर और हाथ—पंगु या निरुद्यम बना दूं।

मरी—महामारी, प्लेग।

तस्सा—चमड़े का टुकड़ा।

भला हमारे...चौपट करता हूँ—अंगरेजी राज्य में नवीन शिक्षा और वैज्ञानिक आविष्कारों के प्रचार तथा विविध ज्ञान-विज्ञान के अध्ययन से भारतवासियों को प्रगति के मार्ग पर अग्रसर होने का उत्तम अवसर मिला था। किन्तु उन्होंने अंगरेजों के ज्ञान-विज्ञान-संबंधी प्रेम, उनके चरित्र, अनुशासन, संगठन-शक्ति, साहस, भाषा-साहित्य-प्रेम, देश-प्रेम आदि का अनुकरण न कर फैशन, मद्यपान, अपने आचार-विचारों को

छोड़कर पश्चिम का अन्धानुकरण आदि बातें ग्रहण कीं। कुछ पढ़े-लिखे लोग देश की उन्नति करना चाहते थे, किन्तु उनकी संख्या बहुत कम थी; वे चारों ओर अज्ञान और अविद्या के घनान्धकार से घिरे हुए थे। ऐसे सुधारकों को सरकार भी संदेह की दृष्टि से देखती थी।

डिसलायल्टी—राजद्रोह। अंगरेज़ सरकार समझती थी कि जो लोग देश में ज्ञान का प्रचार और सुधार करना चाहते हैं वे राष्ट्रीयता के पोषक और अन्ततोगत्वा अँगरेज़ी राज्य को उखाड़ फेंकने के समर्थक हैं।

मेडल और खिताब—अंगरेज़ सरकार अपने समथकों को 'टाइटिल' (उपाधि) देती थी। हरएक उपाधि का अपना अलग-अलग मेडल (पदक) या ख़िताब होता था।

सत्यानाश फौजदार—सत्यानाश व्यापक चीज़ होने के कारण फौजदार कहा गया है। जिन कारणों से सत्यानाश हुआ वे उसकी फौज हैं।

धरके हम... खराब—बहु-मतमतान्तर, फूट-कलह, अविद्या, मद्यपान, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दुर्भिक्ष, मँहगी, रोग, फैशन, अपव्यय, संतोष, छूआछूत आदि सत्यानाश के कारण ही उसके विविध रूप हैं।

फैलाए धर्म—भारत में अनेक धार्मिक मतमतान्तर होने के कारण ऐक्य और संगठन में बाधा पड़ती थी।

छूआछूत का कर्म्म—छूआछूत से भारतवासियों में ऊँच-नीच की भेद-भावना और मिलकर काम न करने की प्रवृत्ति पैदा हुई।

हलाकू—विध्वंस और क्रूरता का प्रतीक। चंगेज़ ख़ाँ के उत्तराधिकारियों में से एक। १२५८ ई० में उसने कला और ज्ञान के केन्द्र बगदाद को नष्ट कर डाला था।

चंगेजी—विध्वंस और क्रूरता का प्रतीक। संसार का प्रसिद्ध सैनिक नेता चंगेज़ खाँ मंगोल। वह मुसलमान नहीं था। ११५५ ई० में उसका जन्म मंगोलिया में हुआ था। १२१९ में उसने मध्य एशिया का विध्वंस किया। बुख़ारा, समरकन्द, हिरात, बलख़ आदि नगर धूल में मिला दिए थे। १२२७ में उसकी मृत्यु हुई।

तैमूर—अपने को चंगेज़ ख़ाँ का वंशज बतानेवाला तैमूरलंग। उसका

१३३६ ई० में जन्म हुआ। १३६९ में उसने चंगेज खाँ का अनुकरण कर अनेक नगरों को उजाड़ दिया। चौदहवीं शताब्दी के लगभग अंत में उसने दिल्ली पर आक्रमण किया और सुलतान शासकों को मार भगाया। थोड़े दिन दिल्ली में रह कर वह वापिस चला गया। किन्तु जिस रास्ते से वह आया और गया उस रास्ते में विध्वंस का राज्य स्थापित कर गया। वह जहाँ गया वहीं असंख्य व्यक्तियों को मरवाया, लूट कराई, और आग लगवाई। दिल्ली में नरमुण्ड ही नरमुण्ड दिखाई पड़ते थे। उसकी मृत्यु १४०५ ई० में हुई।

दुरानी अहमद—विध्वंस और क्रूरता का प्रतीक। अहमदशाह दुर्रानी। १७६१ में वह अफ़गानिस्तान में शासन करता था और उसी वर्ष उसने पानीपत के मैदान में मराठों को पराजित किया। पानीपत के इस युद्ध में अनेक प्रसिद्ध मराठे वीर काम आए और कुछ समय के लिए उनका साम्राज्य-स्वप्न तिरोहित हो गया।

नादिरसाह—तहमास्प कुली (१६८८–१७४७), प्रसिद्ध ईरानी सैनिक नेता जिसने काबुल और कंधार पर विजय प्राप्त कर १७३९ में दिल्ली पर आक्रमण किया। वह भारतवर्ष से अतुलित धन और तख़्त ताऊस ले गया था। रास्ते में उसने हर जगह खूब लूट मार की और असंख्य व्यक्तियों का वध कराया। सर्वनाश का प्रतीक।

तुच्छ सिपाह—सिपाह = सिपाही। इन आक्रमणकारियों के कारण जो सर्वनाश हुआ था वह थोड़े-से भूमिभाग तक सीमित था और अल्पकालीन था। जिस समय 'भारतदुर्दशा' की रचना हुई उस समय समस्त भारतवर्ष विनाश के गर्त में गिर चुका था और उसका प्रभाव भी शीघ्र ही मिटनेवाला न था।

कल बल छल—युक्ति से, बलपूर्वक और छल से। हर प्रकार के साधनों का प्रयोग कर।

'इन्द्रजीत. . .करि राखा'—इन्द्रजीत रावण का पुत्र था जिसे मेघनाद भी कहते हैं।

पुरानन—पुराण नाम के ग्रन्थ बहुत हैं। पुराणों और उपपुराणों की संख्या सौ से ऊपर होगी। किन्तु निम्नलिखित अठारह पुराण प्रामाणिक माने जाते हैं:—

१. ब्राह्म, २. पाद्म, ३. वैष्णव, ४. शैव या वायवीय, ५. भागवत, ६. नारदीय, ७. मार्कण्डेय, ८. आग्नेय, ९. भविष्य, १०. ब्रह्मवैवर्त, ११. लैंग, १२. वाराह, १३. स्कान्द, १४. वामन, १५. कौर्म, १६. मात्स्य, १७. गारुड़ और १८. ब्रह्माण्ड ।

उपपुराणों की संख्या वैसे तो १८ ही मानी जाती है, किन्तु वास्तव में उनकी संख्या और भी अधिक है।

रचि बहु . . .घुसाए—अनेक प्रकार की परस्पर विरोधी बातें जिनसे साधारण जन भ्रम में पड़ जाते हैं।

शैव—शिवोपासक । धार्मिक संप्रदाय ।

शाक्त—शक्ति का उपासक, तंत्र-पद्धति से देवी या शक्ति की पूजा करने वाला धार्मिक संप्रदाय।

वैष्णव—विष्णु की उपासना करने वाला। एक विशेष धार्मिक संप्रदाय जिसके अनुयायी विष्णु की उपासना करते और विशेष आचार-विचार से रहते हैं ।

जाति अनेकन. . .ऊँच बनायो—केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार प्रधान वर्ण ही नहीं वरन् इनके भी असंख्य भेद-उपभेद हैं और जिनमें पारस्परिक खान-पान, विवाह आदि संबंधी अनेक प्रतिबंध हैं। इस वर्णभेद ने समाज में छूत-अछूत, ऊँच-नीच की भावना उत्पन्न की ।

बरजि—रोक कर, निषेध कर।

जन्म पत्र बिधि—विवाह से पूर्व वर तथा कन्या की जन्म-पत्रियों को मिलाना।

बीरज—वीर्य, शक्ति ।

बिभिचार—व्यभिचार।

कूपमंडूक—कुएँ का मेंढक, जिसका दृष्टिकोण और जानकारी सीमित हो।

औरन कौ. . .घटायो—संसार के और लोगों से, खान-पान और छुआछूत संबंधी प्रतिबंधों का कारण, संपर्क छुटा कर अपना अनुभव और उपयोग घटाया अर्थात् पिछड़ गए।

बहु देवी देवता. . .हिंदू घबराई—अनेक देवी-देवताओं, भूत-प्रेत आदि की पूजा में लिप्त रहने के कारण हिन्दू लोग ईश्वर के, धर्म के वास्तविक रूप को भूल कर भ्रमित रहते हैं।

अपरस—न स्पर्श करने योग्य, स्पर्श न किया गया।

सोल्हा छूत—रेशमी वस्त्र। 'सोल्हा छूत' का अर्थ सोलह छूत अर्थात् अनेक प्रकार के छूआछूत भी लिया जा सकता है।

तीन तेरह—तितर-बितर अर्थात् सामाजिक ऐक्य और संगठन का अभाव।

रचि कै मत...हाथ अरु पाय—वेदांत के 'अहं ब्रह्मास्मि' के नाते सभी ब्रह्म-स्वरूप होकर पंगु हो गए अर्थात् अपना-अपना कर्त्तव्य भूल गए, नियमादि के पालन की चिंता न रही, एक-दूसरे के प्रति प्रेम-भाव न रह गया। परब्रह्म बिना हाथों के काम करता है, बिना पैरों के चलता है, बिना आँखों के देखता है, इस दृष्टि से 'तोरि हाथ अरु पाय' कहा गया है।

वेदांत—छः दर्शनों में से प्रधान दर्शन जिसमें चैतन्य या ब्रह्म ही को एक-मात्र पारमार्थिक सत्ता स्वीकार किया गया है।

इतिकर्त्तव्यता—कर्त्तव्य, नियम।

रुक्ष—आत्मज्ञानी विविध रूपात्मक जगत् को, अपने-पराए को, विरह-संयोग को, सुख-दुःख को सब को भ्रम मानता हुआ अपनी अभावुकता, रसहीनता प्रकट करता है।

जब स्नेह...प्रयत्न कहाँ—जब आपस में एक दूसरे के प्रति प्रेम नहीं है सहानुभूति नहीं है, अर्थात् जब अपने चारों ओर रहनेवाले लोगों की दुर्दशा देखकर हृदय नहीं पसीजता तो उनके उद्धार की बात कैसे पैदा हो सकती है। देश व्यक्तियों से ही बनता है।

राज न...पेनशन ही सही—सक्रियता और प्रगति का अभाव। प्राचीन वैभव पर जीवित रहना।

रोजगार न....सूद ही सही—पुरानी (सांस्कृतिक) पूँजी पर निर्भर रहना।

वह भी नहीं...का सही—अपनी (सांस्कृतिक) संपत्ति को नष्ट कर डालना।

व्यापार को...मार गिराया—अँगरेजी राज्य में भारतवर्ष का वाणिज्य-व्यवसाय नष्ट हो चुका था। यूरोपीय जातियाँ व्यापारिक उन्नति और धनोपार्जन के लिए अनेक कष्ट सहतीं और दूर-दूर देशों में जाती थीं। भारतवासी इस प्रकार का कष्ट न उठाकर जो कुछ मिल जाता था उसी में संतोष कर लेते थे। इसी-लिए अंगरेज़ी राज्य में भारतवासियों की औसत आय बहुत कम हो गई थी।

हाथ साफ किए—प्राप्त की। अदालतों के कारण काफ़ी धन खर्च होता था और देश की जनता को और भी आर्थिक कष्ट पहुँचता था।

बिल और टोटल—बिल=खरीदी हुई वस्तु के मूल्य का पुर्ज़ा। टोटल=जोड़। फैशन के कारण बने हुए बिल और बिलों के रुपयों का जोड़। फैशन के कारण अपव्यय।

गोले—बिलों के गोले अर्थात् अत्यधिक अपव्यय।

अंटाधार—चौपट।

तुहफे—भेंट, उपहार।

चंदे—सरकार को दिए गए चंदे।

'बम बोल....दिसा'—बम=लोहे का विस्फोटक गोला। तुहफे, घूस, और चन्दे दे-देकर धन आदि समाप्त हो गया, कुछ न रह गया।

'मोटा भाई. ..मूँड़ लिया'—बड़ा भाई या अमीर कह-कह कर सब कुछ ठग लिया।

पँड़िया के ताऊ—भैंसा, अर्थात् बुद्धू।

चुटकी बजी—इशारा हुआ, अर्थात् इशारे पर तरह-तरह के नाच नचाए।

बराबरी का झगड़ा उठा—ऊँचे-नीचे दर्जे का झगड़ा।

धायँ धायँ गिनी गई—सलामी मिली।

वर्णमाला कंठ कराई—सी० आई० ई० आदि उपाधियाँ मिलीं।

हाथी के खाए कैथ हो गए—खोखले हो गए।

धन की सेना... शरण मिली—धन प्राप्त करने के जितने भी साधन थे, सब नष्ट हो गए, उनका कोई चिह्न तक बाकी न रहा और देश का धन देश में न रह कर इँगलैण्ड जाने लगा। अंगरेज़ों की आर्थिक नीति, कर, अंगरेज़ कर्मचारियों के वेतन, युद्ध-कर आदि के कारण देश का धन देश में न रह कर विदेश जाने लगा था।

अश्रुमार्जन—आँसू गिराना।

पंचामृत—एक प्रकार का द्रव्य जो दूध, दही, घी, चीनी और मधु मिलाकर बनाया जाता है, अर्थात् फूट, डाह आदि को शत्रु की फौज में ऐसा घुलामिला दिया कि वे अलग मालूम न पड़ें।

घंटा पर के गरुड़—झूठे गरुड़, अर्थात् गतिहीन, जो कुछ न कर सके। शत्रु को बिना आक्रमण किए गतिहीन और पंगु कर दिया।

काई की तरह फाड़ा—तितर-बितर कर दिया।

योजन—दूरी जो विभिन्न मतानुसार दो, चार और आठ कोस की मानी जाती है।

शस्य—खेती, अन्न।

लाही—लाख से मिलता-जुलता एक कीड़ा जो प्रायः फसल को हानि पहुँचाता है।

नील ने भी नील बन कर—भारतेन्दु का संकेत नील की खेती की ओर है। पहले 'नील' शब्द का अर्थ है एक पौधा जिससे नीला रंग निकाला जाता है। इसकी खेती पूर्वी उत्तर-प्रदेश और बिहार में बहुत होती थी। 'नील बनकर' अर्थात् कलंक का टीका बनकर। नील की खती के आधार पर अंगरेज़ों ने भारतवासियों का खूब आर्थिक शोषण किया और तरह-तरह के अत्याचार किए।

लंकादहन—घर का नष्ट होना। कहते हैं लंका सोने की बनी थी। भारत भी सोने की चिड़िया के नाम से प्रसिद्ध था। जिस प्रकार लंका का दहन एक बाहर से गए वानर ने किया था, उसी प्रकार बाहर से आई हुई अंगरेज़ जाति ने भारत को उजाड़ डाला।

बाकी साकी—बाकी—शेष। 'साकी' निरर्थक शब्द जुड़ा हुआ है, जैसे, 'पानी-वानी'।

सपराए डालता हूँ—पूर्ण किए देता हूँ।

महर्घ—महार्घ, महँगी।

धन, बल और विद्या—भारतीय अराजकतापूर्ण परिस्थिति और अंगरेज़ों की पूँजीवादी-साम्राज्यवादी नीति के कारण भारत का धन नष्ट हुआ, दासत्व के कारण देश की अपनी कोई सैन्य-शक्ति न रह गई, और देश की शिक्षा-पद्धति टूट जाने से अविद्या का प्रचार हुआ। अंगरेज़ों द्वारा प्रचलित नवीन शिक्षा केवल शासन-संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति मात्र के लिए थी और वह समाज बहुत थोड़े व्यक्तियों तक सीमित था।

चौथा अंक

आन—दुहाई, मर्यादा, आतंक।

मेरो हो... भगवान—टट्टी=आड़। मेरे ही बहाने भगवान् लोगों के प्राण हरते हैं।

मृत्यु कलंक—मेरा बहाना हो जाने के कारण मृत्यु कलंक के टीके से बच जाती है।

अत्तार—अर्क वगैरह खींचने वाला, देशी दवाइयाँ बेचने वाला। रोग के कारण ही वैद्य और अत्तार का पालन-पोषण होता है, जीविका-निर्वाह होता है।

कुथ्पय—जो खाने योग्य न हो।

पथ्य—हल्का और शीघ्र पचनेवाला खाना जो रोगी के लिए लाभदायक हो।

नजर—बुरी निगाह का प्रभाव पड़ना।

श्राप—शाप, कोसना, अहित-कामना।

टोना—जादू, मंत्र।

टनमन—तंत्र-मंत्र, टोना।

देवी-देवता—देवी-देवता का सिर चढ़ना।

ओझा—भूत पुजानेवाला, झाड़-फूँक करने वाला।

दरसनिए—वे लोग जो शीतला आदि की शांति की पूजा कराते हैं।

सयाने—भूत-प्रेत आदि उतारने वाला।

पंडित—ग्रह आदि बतानेवाला।

सिद्ध—जिसने योग या तप द्वारा अलौकिक लाभ या सिद्धि प्राप्त की हो, योग की विभूतियाँ दिखानेवाला। यहाँ पर 'सिद्ध' से उस व्यक्ति का तात्पर्य है जो इस प्रकार की झूठी शक्ति के आधार पर लोगों को चमत्कार दिखाते फिरते हैं।

जस जस सुरसा....रूप दिखावा'—तुलसी कृत रामायण के सुन्दर काण्ड

से। सुरसा एक प्रसिद्ध नागमाता का नाम है जिसने हनुमान जी को समुद्र पार करने के समय रोका था।

सड़क चौड़ी होना—आरोग्य की दृष्टि से लाभदायक होती है।

'जस-जस...दिखावा'—तुलसी की पंक्तिया। समुद्र पार करते समय सुरसा राक्षसी हनुमानजी को निगल जाने के लिए जितना मुँह फैलाती थी, उतना ही हनुमान जी अपना शरीर बढ़ा लेते थे। यहाँ तात्पर्य है कि चुँगी की ओर से जितना अधिक प्रयत्न लोगों के स्वास्थ्य के लिए होगा उतना ही हम उग्र रूप धारण कर लेंगे।

धन्वंतरि—देवताओं के वैद्य जो पुराणानुसार समुद्र-मन्थन के समय और सब वस्तुओं के साथ निकले थे। वे आयुर्वेद के सब से प्रधान आचार्य और सब से बड़े चिकित्सक मान जाते हैं।

काशिराज दिवोदास—चन्द्रवंशी राजा भीमरथ के एक पुत्र जो काशी के राजा थे और धन्वन्तरि के अवतार माने जाते हैं।

सुश्रुत—आयुर्वेदीय चिकित्सा-शास्त्र (शल्य क्रिया) के एक प्रधान आचार्य जिनका रचा हुआ 'सुश्रुत-संहिता' ग्रन्थ बहुत मान्य है।

वाग्भट्ट—'अष्टांगहृदयसंहिता' नामक वैद्यक ग्रन्थ और वैद्यक निघंटु के रचयिता।

चरक—वैद्यक के प्रधान आचार्य। ईसवीं शताब्दी के प्रारंभ में उनका आविर्भाव-काल माना जाता है। कहा जाता है वे कनिष्क के यहाँ राजवैद्य थे।

बैदगी—वैद्यकी।

जीविका के हेतु बची है—वैद्य लोग अपनी विद्या से केवल पेट पालते हैं; उनकी दवाओं में असर नहीं रह गया।

विस्फोटक—फूट पड़नेवाला रोग, फुड़िया-फुँसी।

डेंगू—एक प्रकार का ज्वर।

अपाप्लेक्सी—लकवा।

आछत—रहते हुए।

टिकस—टैक्स, कर।

पान का बीड़ा—जो व्यक्ति किसी काम के करने का दृढ़ संकल्प कर लेता था या भार लेता था वह पान का बीड़ा उठाता था।

पोस्ती—अफीमची।

पोस्त—अफ़ीम के पौधे का डोंडा।

पोस्ती ने... कोस—एक अफीमची अफीम का डोडा पीकर नौ दिन में केवल ढाई कोस चला। आलस्य का प्रतीक।

डाक का हरकारा—राज्य की ओर से चिट्ठी-पत्री ले जाने वाला। जब आधुनिक डाक-व्यवस्था नहीं थी, उस समय हरकारे तेज़ी के साथ पैदल दौड़-दौड़ कर डाक ले जाते थे। पोस्ती का नौ दिन में अढ़ाई कोस चल लेना भी बहुत है।

कूंड़ी के... पार—जब अफीम पी तो या तो कूँड़ी (पत्थर का प्याला) के इधर ही बैठे रहे, बहुत चले तो उसकी दूसरी ओर पहुँच गए। आलस्य का प्रतीक।

बारी—बगीचा।

हालमस्त—जिस हालत में हो उसी से संतुष्ट।

आलसी पड़े... चैन है—अर्थात् आलस्य के कारण कुएँ में से निकलना भी नहीं चाहता। उसी पतित हालत में सन्तुष्ट है।

ग़ज़ल—फारसी और उर्दू में एक प्रकार की कविता।

मिस्ले—समान।

लोथ—निर्जीव, मुर्दा।

नक्शेपा—पदचिह्न।

उठकर... नहीं अच्छा—माशूक के घर तक जाना पड़ेगा, इसलिए दिल लगाना ठीक नहीं।

उमरा—रईस।

फाकों—उपवास, कुछ न खाना।

सिजदे—दंडवत। सिजदा करने में शरीर तो हिलाना ही पड़ता है।

बिहिश्त—स्वर्ग।

दोज़ख़—नरक।

काहिल—सुस्त, आलसी।

मीरेफर्श—फर्श का सरदार अर्थात् जिसे ज़मीन पर पड़े रहने में ही आनंद आवे।

काजी—मुसलमान धर्म के अनुसार न्याय करने वाला।

काजीजी ... अंदेश से—बेमतलब दुनिया भर की चिंता में घुलना।

अंदेशा—चिंता, फिक्र, डर।

'कोउ नृप ... रानी'—तुलसी की पंक्तियाँ हैं। कैकेयी को उभाड़ते समय मंथरा की उक्ति। अपनी परिस्थिति से संतोष, और दुनिया की बातों से कोई संबंध न रखना।

'अजगर ... राम'—बाबा मलूकदास कृत। कवि का तात्पर्य राम की कृपा से है, किन्तु आलसी लोग इसे अपने ऊपर घटित करते हैं।

दंत कटाकट—दाँत बजाना, रटना।

'जो पढ़तव्यं... कर्त्तव्यं'—पढ़नेवाला भी मरता है, जो नहीं पढ़ता वह भी मरता है। तब फिर दाँत बजाने से क्या लाभ, अर्थात् परिश्रम करना व्यर्थ है। लोक-प्रचलित उक्ति है।

जात में ब्राह्मण—सब जातियों में ब्राह्मण जाति अच्छी जिसे कुछ नहीं करना पड़ता। घर बैठे लोग सीधा दे जाते हैं।

बैरागी—विरागी, वैष्णव मत के साधुओं का एक भेद जो बिना किसी परिश्रम के उदरपूर्ति कर लेता है।

रोजगार में सूद—सूद का रुपया अपने आप चला आता है, परिश्रम नहीं करना पड़ता। सूदखोर घर बैठे सूद खाते हैं।

दिल्लगी में गप—दिल्लगी के लिए तब भी दिमागी परिश्रम और दूसरे व्यक्ति की अपेक्षा रहती है, गप के लिए ऐसी कोई आवश्यकता नहीं होती। किसी से लेना न देना, बस एक जगह बैठे बातें बनाना। काहिली की निशानी।

तान मारना—निश्चिन्त रहकर मन की मौज में बहना।

सुरखाब का पर—सुरखाब एक पक्षी है जिसे चकवा भी कहते हैं। विलक्षणता या विशेषता या अनोखापन का द्योतक।

'तवंगरी बदिलस्त न बमाल'—(फ़ारसी) अमीरी हृदय में है, धन में नहीं।

मालमस्त—धन से सन्तुष्ट।

हालमस्त—अपनी परिस्थिति से सन्तुष्ट।

जोगनिद्रा—योगाभ्यास करते हुए सो जाना, समाधि। यहाँ आलस्य की भेजी जोगनिद्रा सबको अभिभूत करे, अर्थात् सब लोग ग़फ़लत की नींद में पड़े रहें।

बप्पा—बाप।

'सरबस खाइ ... प्राना'—सब कुछ खाकर तथा नाना भोग भोगने के बाद समरभूमि में प्राण प्रिय हो गए, अर्थात् लोग कृतघ्न कहेंगे।

भगवान् सोम—चन्द्रमा। वेदों में सोम-पान का उल्लेख है।

वेद—चार वेद हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। भारतीय आर्यों के सर्वमान्य और सर्वप्रधान ग्रन्थ।

श्रौत्रामणि यज्ञ—वेदविहित एक यज्ञ विशेष। इस यज्ञ का वर्णन शुक्ल यजुर्वेद संहिता के १९ वें अध्याय में है। इस अध्याय में सर्वत्र सोम और सोमपान की चर्चा है।

स्मृति—हिन्दुओं के धर्मशास्त्र जिनमें धर्म, दर्शन, आचार-व्यवहार, शासन-नीति आदि के विवेचन हैं, जैसे मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति आदि।

तंत्र—उपासना-संबंधी एक शास्त्र जो शिव-प्रणीत माना जाता है और गुप्त रखा जाता है।

बीराचमन—अग्नि-पूजकों की पवित्र शराब।

शराबुन् तहूरा—मुसलमानी धर्म के अनुसार पवित्र शराब जो स्वर्ग में मिलती है।

बापटैज़िंग वाइन—बपतिस्मा अर्थात् किसी व्यक्ति को ईसाई बनाने के मुख्य संस्कार के समय ईसाई संप्रदाय द्वारा प्रयुक्त शराब।

सरकार—अंगरेज़ी सरकार के राज्य में।

ब्राह्मण, क्षत्री वैश्य—अर्थात् हिन्दुओं के उच्च वर्ण।

सैयद—मुसलमानों के चार वर्गों में से एक। मुहम्मद साहब के नाती हुसैन के वंश का आदमी। शब्दार्थ है 'बड़ा'।

सेख—मुसलमानों के चार वर्गों में से पहला। इस्लाम धर्म का आचार्य। मुहम्मद साहब के वंशजों की उपाधि।

पठान—एक मुसलमान जाति जो अफ़गानिस्तान की रहनेवाली थी, और जो भारत आकर पठान कहलाई। यह जाति अब पाकिस्तान के सीमान्त प्रदेश में रहती है। १६वीं शती में बाबर को इस जाति का मुकाबला करना पड़ा था।

भट्ट के ठट्ट—भट्ट=ब्राह्मणों की एक उपाधि। भट्टों का समूह।

गुजरातिन—गुजराती, जिनमें वैष्णवों की संख्या अधिक है।

गौतम—गौतम ऋषि के वंशज, ब्राह्मणों की एक उपाधि।

अग्र के नंद—अग्रवाल।

लोट—नोट।

टोटल—(बिल का) जोड़।

विधि—ब्रह्मा।

वारुणी—मदिरा।

पोर्ट—गहरी लाल पुर्तगाली शराब।

विष्णु . . . बिचारि—शराबियों में प्रायः यह उक्ति सुनी जाती है। वारुणी विष्णु, पोर्ट पुरुषोत्तम, मद्य मुरारि, शैम्पेन शिव, गौड़ी गिरीश और ब्रांडी ब्रह्मा के समान है।

शांपिन—शैम्पेन (फ्रांसीसी शराब)

गौड़ी—एक प्रकार की गुड़ से बनी मदिरा।

ब्रांडी—ब्रैंडी।

उमगावन—उमंग पैदा करना।

हरि. . .लखात—जो बिना तप के ईश्वर से नाता जोड़ती है; अर्थात् मद्यप थोड़ी देर के लिए संसार को भूल कर तरंगायित हो उठता है।

तो सबसो. . .कर बंठाय—ताकि सरकार को अधिक से अधिक आमदनी होती।

निसानी—चिह्न।

थिर—स्थिर।

मनु—ब्रह्मा के चौदह पुत्र जो मनुष्यों के मूल पुरुष माने जाते हैं:— **स्वायम्**, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत्, चाक्षुष, वैवस्वत, सार्वणि, दक्ष सार्वणि, ब्रह्म सार्वणि, धर्मसार्वणि, रुद्र सार्वणि, देव सार्वणि और इन्द्र सार्वणि। चाक्षुष तक मनु हो चुके। वैवस्वत आजकल हैं। शेष होने को हैं।

'प्रवृत्तिरेषा भूतानां—प्राणियों की यही प्रवृत्ति होती है।

भागवत—अठारह पुराणों में से एक, और वैष्णवों का प्रिय ग्रन्थ जिसमें १२ स्कंध, ३१२ अध्याय और १८००० श्लोक हैं। वह वेदान्त का तिलक-स्वरूप माना जाता है।

'लोके व्यवायामिषमद्यसेवा नित्यास्ति जंतो':—संसार में जीव मैथुन, आमिषाहार, मद्य-सेवा नित्यप्रति करते हैं।

वर्तमान सभ्यता. . .मूलसूत्र हूँ—वर्तमान सभ्यता मुझ पर ही आधारित है। अत्यधिक प्रचार।

पंच विषयेंद्रिय—पदार्थों के रूप, रस, गंध आदि के अनुभव में सहायक पाँच इन्द्रियाँ—चक्षु, श्रोत्र, रसना, नासिका और त्वचा।

संगीत-साहित्य—मदिरा की तरंग में सब कुछ भूल कर, संगीत-साहित्य की रचना पूर्ण रूप से उनमें लीन होकर की जाती है। कहा जाता है मदिरा-पान कर कल्पना और भी तीव्र हो जाती है।

मदवा—मद्य।

हिन्दुओं से समझो तो—हिन्दुओं के साथ निपटारा करो तो। अर्थात् हिन्दुओं से लग कर उन पर अपना जाल फैलाओ।

स्खलित नृत्य—लड़खड़ाते हुए, गिरते हुए नृत्य।

महामोह—महा अज्ञान्।

थाप—बाजे पर पूरे पंजे का आघात अर्थात् पूरी छाप।

तमोगुण—प्रकृति के तीन भावों (सत्व, रज और तम) में से एक जो भारी और रुकने वाला तथा निकृष्ट माना गया है। इसी के कारण निकृष्ट कर्म होते हैं।

उलूक—उल्लू।

शोकितों—क्षुब्ध व्यक्ति।

चारों नेत्र—दो चर्म चक्षु और दो हृदय चक्षु।

आध्यात्मिक—आत्मा-संबंधी।

आधिभौतिक—शरीर-संबंधी।

विलायत...द्वापर है—चार युग—सत युग, त्रेता, द्वापर और कलि। धर्म के चार चरण माने जाते हैं—सतयुग में चारों रहते हैं, त्रेता में तीन, द्वापर में दो और कलियुग में केवल एक ही रह जाता है। इसलिए विलायत में अभी धर्म का प्राबल्य है, वहाँ हमारी दाल नहीं गलेगी।

गैस और मैगनीशिया—वैज्ञानिक युग के प्रतीक। गैस और मैगनीशिया दोनों प्रकाश करने के काम आते हैं अर्थात् जहाँ ज्ञान का प्रकाश है वहाँ अज्ञान रूपी अंधकार का क्या काम।

'बहुत बुझाइ ... जानत अहऊँ'—तुम स्वयं चतुर हो, तुम्हें और क्या समझाऊँ।

बैतालिक—वह स्तुति-पाठ करने वाला जो राजाओं को स्तुति करके जगाता था। भारतदुर्दैव की यहाँ स्तुति की गई है।

पटाक्षेप—पर्दे का गिरना।

निहचै—निश्चय।

धूर—धूल अर्थात् अब वे मिट्टी में मिल जायँगे।

धर्म्म—धर्मराज युधिष्ठिर।

शाक्यसिंह—शाक्यजाति का सिंह अर्थात् गौतम बुद्ध।

व्यास—पराशर तथा सत्यवती के पुत्र कृष्ण द्वैपायन जिन्होंने वेदों के ऋक्, यजु और साम तीन विभेद और उनका संपादन किया। कहा जाता है कि अठारहों पुराण, महाभारत, भागवत और वेदांत आदि की रचना भी इन्होंने की थी। इन्हीं के पुत्र शुकदेवजी हुए।

सेवाजी—शिवाजी, जिन्होंने सत्रहवीं शताब्दी में औरंगज़ेब से मुठभेड़ लेते हुए वीरता का प्रदर्शन किया।

रनजीतसिंह—रणजीतसिंह जिनकी मृत्यु १८३९ में हुई। वे अत्यन्त वीर सिक्ख-नरेश थे जिन्होंने कश्मीर तथा अफ़गानिस्तान तक धावा मारा। अंगरेज़ उनसे भयभीत रहते थे।

उदैपुर ... पन्ना आदिक—जहाँ अनेकानेक वीर हुए।

कूढ़—अज्ञानी, बेवकूफ़।

'अँगरेजहु को . . . हैं मूढ़'—प्रत्यक्षतः सुख-शांति और ज्ञान-विज्ञान का प्रचार अंगरेज़ी राज्य में हुआ। तब भी हिन्दुओं ने उन्नति न की।

स्वारथ पर—अपने स्वार्थ में मग्न।

विभिन्न मतवाले—विचारों की दृष्टि से अनैक्य।

बाजी—बाज़ी, होड़ लगा-लगाकर।

बिगत उछाह—उत्साहहीन।

नरनाह—राजा।

एकता बुद्धि कला—ऐक्य, ज्ञान और कला का अभाव भारतेन्दु को बहुत खटकता था।

बोझ—कर आदि का बोझ।

पैर छानि के निज-सुख—अपने सुख में पैर छान कर अर्थात् अपने सुख में लीन होकर (भारतवासियों पर कर आदि बोझ लाद कर अत्याचार भी करो, किन्तु भारतवासी कुछ नहीं बोलते)।

रासभ—गदहा, खच्चर।

छमा-अगार—क्षमा के अगार, घर। क्षमाशील।

जवनिका—नाटक का पर्दा जो अभिनय के अंत में गिराया जाता है।

पांचवां अंक

बंगाली—ऐतिहासिक कारणों से बंगाली शिक्षा और सार्वजनिक क्षेत्र में अग्रगण्य थे। भारतेन्दु बंगालियों के संपर्क में आ चुके थे और उनके स्वभाव से अच्छी तरह अवगत थे।

महाराष्ट्र—उपर्युक्त कारण से ही महाराष्ट्र का उल्लेख हुआ है।.मराठों की राजनीतिक शक्ति का पतन हुए भी अभी बहुत दिन न हुए थे।

एडिटर—संपादक। संपादक तत्कालीन शिक्षित वर्ग के सदस्य सार्वजनिक जीवन के प्रधान अंग थे। भारतेन्दु स्वयं संपादक होने के कारण उनकी प्रवृत्ति से भली भाँति परिचित थे।

कवि—भारतेन्दु स्वयं कवि थे। यहाँ उस कवि से तात्पर्य है जो देश की दीनहीन दशा पर दृष्टिपात न कर रीतिकालीन परंपरा के मोह में ग्रस्त था।

देशी महाशय—भारतेन्दु व्यक्तिगत जीवन के अनुभव से देशी लोगों की प्रवृत्तियों से भी परिचित थे। देशी लोगों के दोषों का वर्णन करने के साथ-साथ उनकी दूरदर्शिता का उल्लेख भारतेन्दु ने किया है। और लोग जब व्यर्थ की बातें करते हैं तो प० देशी मूल बात कहता है—विद्या और कला की उन्नति।

परिहार—दोष आदि का निवारण या निराकरण, दोषादि के दूर करने की युक्ति या उपाय।

बीर्जोबल—वीर्य और बल।

जो शब . . . होगा—भारत की उन्नति के लिए मतैक्य सब से पहली आवश्यकता थी। भारतेन्दु इस बात पर बहुत ज़ोर देते थे।

ब्रिटिश इंडियन असोसिएशन—वैज्ञानिक ज्ञान तथा साधनों के प्रचार तथा समस्त देश में राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना से भारतवासियों में राजनीतिक चेतना का प्रादुर्भाव हुआ जिसका प्रकटीकरण पहले-पहले बंगाल के ब्रिटिश इंडियन ऐसोसिएशन के माध्यम द्वारा हुआ। इस संस्था के सदस्य अधिकतर उच्च शिक्षित वर्ग के थे। उस समय यही संभव भी था।

शोनता—सुनता।

हुआँ—वहाँ।

हेंयाँ—यहाँ।

अलबत्त—निस्संदेह, बेशक।

उपवेशन—बैठना।

यहीं मगर . . . कुछ नहीं—पढ़े-लिखे केवल बातें बनाने, लंबी-चौड़ी आयोजनाएँ बनाने में ही प्रवीण थे। व्यावहारिक रूप में कुछ न कर पाते थे। सरकार से डरते थे।

क्यों भाई . . . कर देंगे—दूसरा देशी, देशी अर्थात् हिन्दीभाषियों के दोषों का प्रतिनिधित्व करता है। प्रस्तुत कथन से उसकी पद-लोलुपता प्रकट होती है।

मुहम्मदशाह—मुगल-सम्राट्। सिंहासन—१७१९, मृ० १७४८। १८ वीं शताब्दी में दो ही मुगल सम्राटों ने दीर्घकाल तक राज्य किया—मुहम्मदशाह और शाह आलम द्वितीय (१७५९–१८०६)। मुहम्मदशाह के समय में साम्राज्य में पूर्ण अराजकता फैली। वह स्वयं विषय-भोग, आमोद-प्रमोद में इतना लिप्त रहता था कि मुहम्मदशाह रंगीले के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

भाँड़—मसख़रा, एक प्रकार के पेशेवर जो महफ़िलों आदि में जाकर नाचते-गाते और हास्यपूर्ण नकलें उतारते हैं।

कनात—मोटे कपड़े की वह दीवार जिससे किसी स्थान को घेर कर आड़ करते हैं।

मुए—स्त्रियों, विशेषतः मुसलमान स्त्रियों, द्वारा दी गई गाली। मरा हुआ।

मुहम्मद शाह . . . किया जाय—इन पंक्तियों से तत्कालीन कवियों की प्रवृत्ति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। वीर-रस से विमुख और केवल शृंगार का ही निरूपण करनेवाले कवियों से और आशा ही क्या की जा सकती थी।

एडूकेशन—शिक्षा।

एडूकेशन को . . . क्या कहते हैं—शिक्षा, ज्ञान-विज्ञान का प्रचार किया जाय, नई-नई संस्थाओं, समाचारपत्रों और भाषाओं द्वारा लोगों में चेतना उत्पन्न की जाय।

उत्सन्न—खोद डालना।

हमलोग. . .अपना बचाव करता—नवीन शिक्षा, वैज्ञानिक आविष्कारों आदि

से राजनीतिक चेतना और सामाजिक तथा धार्मिक सुधारवादी आंदोलनों का जन्म हुआ। राजनीति के क्षेत्र में भी भारतीय आन्दोलन कुछ सुधारों तथा माँगों तक ही सीमित था। जो कुछ 'विरोध' था। भी वह ब्रिटिश पार्लमेंट के 'हिज़ मैजेस्टीज़ औपोज़ीशन' के रूप में था। भारतवासी इंगलैण्ड से संबंध-विच्छेद करना नहीं चाहते थे। वे चाहते थे कि इंगलैण्ड भारत में अपने नैतिक मिशन को अच्छी तरह समझ कर उसे व्यावहारिक रूप दे। वे ब्रिटिश नागरिकों के समान अधिकार चाहते थे। अँगरेज़ी राज्य एक तरह से उन्होंने अपना लिया था। किन्तु तब भी अँगरेज़ों को भारतवासियों की आकांक्षाएँ और नए ज्ञान के प्रकाश में अपने जीवन को सुधारने की भावना अच्छी नहीं लगती थी और उन्हें वे सन्देह की दृष्टि से देखते थे।

झाड़बाजी—फटकार पड़े (अँगरेज़ सरकार द्वारा)।

बनात—एक प्रकार का बढ़िया ऊनी कपड़ा।

गजी—एक प्रकार का मोटा देशी कपड़ा।

पाँच जन बंगाली—शिक्षित, चेतना-प्राप्त बंगाली।

पिशान—आटा।

स्वेज का नहर—१८६९ में स्वेज के खुल जाने से न केवल इँगलैंड और भारत के बीच का फ़ासला ही कम हुआ और नए-नए विचारों का देश में प्रचार ही हुआ, भारत में अँगरेज़ों के साम्राज्यवादी और औपनिवेशिक दृष्टिकोण को भी बल मिला। स्वेज़ के खुल जाने से इँगलैंड से नीति निर्धारित की जाने लगी। अँगरेज़ भारत को घर न बना कर तुरंत इँगलैंड वापिस जाने लगे—आदि।

पिवरी—एक यंत्र जिससे जल निकाला जाता है।

हाय ! यह कोई ...हो जायगा—भारतेन्दु विद्या और कला की उन्नति को बहुत महत्व देते थे। बिना इसके समाचारपत्रों में छपे लंबे-लंबे लेखों का भी कोई महत्व नहीं था—उन्हें समझता कौन।

आर्टिकिल—लेख।

छींक हुई थी—अपशकुन हुआ था। अंध-विश्वास का द्योतक है।

डिसलायलटी—(अंगरेजी राज्य के प्रति) भक्ति का अभाव। पुलिसवेष में।

हम लोग...एकत्र हुए हैं—यही बात थी जो अँगरेज़ों को अच्छी नहीं लगती थी और इसे अंगरेज़ी राज्य को उखाड़ फेंकने का प्रयत्न समझकर संदेह की दृष्टि से देखते थे। ज्ञान-विज्ञान का प्रचार, सुधार आदि का मतलब था चेतना का जन्म जो अँगरेज़ी राज्य के लिए घातक सिद्ध हो सकती थी और हुई भी। अँगरेज़ चाहते थे कि भारतवासी शासन-कार्य सम्हालने भर के लिए पढ़ें, नहीं तो वे जहाँ थे वहीं पड़े रहें।

विभीषिका—भयानक कांड, डर।

पालिसी—नीति।

'कवि वचन सुधा'—भारतेन्दु द्वारा संपादित पत्र। १८६८ में उसका प्रकाशित होना प्रारंभ हुआ था। इस पत्र का हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में महत्वपूर्ण स्थान है। भारतेन्दु के लोकप्रिय व्यक्तित्व की छाप होने के कारण यह पत्र मासिक से पाक्षिक और पाक्षिक से साप्ताहिक हो गया था। १८८० के लगभग 'मर्सिया' शीर्षक एक पंच के प्रकाशित होने से वह सरकार का क्रोध-भाजन बन गया, जिसके फलस्वरूप सरकार ने उसे खरीदना बन्द कर दिया। भारतेन्दु को इससे काफ़ी आर्थिक हानि हुई। १८८५ में 'कविवचनसुधा' का प्रकाशन बन्द हो गया।

ऐक्ट—कानून।

हाकिमेच्छा—शासक की इच्छा। अर्थात् अँगरेज़ों की नीति और हाकिमों की इच्छानुसार कोई स्वदेश-हित वाला कार्य 'डिसलायल्टी' के रूप में देखा जा सकता था।

भटवा तुम कहता है..अब मरे—भड़ुआ 'तुम' कहकर अँगरेज़ शासकों की भेजी हुई 'डिसलायल्टी' को संबोधित कर उसका अनादर करता है, अब बिना दण्ड पाए न बचेंगे।

चेयरमैन—सभापति।

अगुआ—नेता (सभापति महोदय का कायरपन दिखाया है। बातें करने में ही तेज हैं)।

छठा अंक

बैस—वयस, उम्र।

निसि . . . बीत्यो—न मालूम कितने रात-दिन व्यतीत हो गए, पर तुम अभी तक नहीं जगे।

काल राति—प्रलय की अंधेरी और भयावनी रात्रि अर्थात् घोर अज्ञानांधकार।

बैरि-बस—वैरी के वश में, अर्थात् जो बातें तुम्हें पतित बनानेवाली हैं उन्हीं के वश में।

किन—क्यों न।

बड़ाई—बड़प्पन, गौरव, महिमा।

मुँह बाई—मुँह फाड़े रह जाओगे, अर्थात् विस्मित या आश्चर्य चकित होकर रह जाओगे।

शिरोमणि—बुद्धि, बल और धन की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ।

रच्छित—भारत के बाहुबल का यश चारों ओर फैला हुआ था। जो भारत के मित्र देश थे वे बिना किसी भय के रहते थे।

सिच्छित—गणित आदि के क्षेत्र में भारत ने विदेशों को ज्ञान दिया।

भौंह हिलाए—ज़रा भी क्रुद्ध हो जाने से।

मंगल साथा—मंगल-कामना सहित।

किरिन—(ज्ञान की) किरण।

भारत . . . संसारा—भारत के जीते रहने से संसार जीवित रहता था (क्योंकि संसार भर के बल और बुद्धि का स्रोत भारतवर्ष ही था)।

फिनिक—फिनिशिया। कार्थेज इसी देश का प्रसिद्ध नगर था।

मिसिर—मिश्र।

सीरीय—सीरिया।

युनाना—यूनान (ये सब प्राचीन देशों के नाम हैं जो इसवी पूर्व समय में बहुत बढ़े-चढ़े थे)।

तकसीर—दोष, कसूर।

बिधि—ब्रह्मा, भाग्य।

बिधना—ब्रह्मा, भाग्य।

रोम—रोम नगर या देश। यूनान की भाँति प्राचीन देश।

बर्बर—पिछड़े हुए वाह्य आक्रमणकारी, जैसे गोथ्स, मंगोलियन हूण आदि जातियाँ जिन्होंने रोम पर आक्रमण किया और उसके प्राचीन वैभव को नष्ट कर दिया। यह ईसा की तीसरी और बाद की शताब्दियों में हुआ।

कीरति-थंभ—कीर्ति-स्तंभ, यश की स्मारक चीज़ें।

प्रण टेकन—प्रण या प्रतिज्ञा के सहारे अर्थात् पूर्ण करनेवाले।

बरु—चाहे, कुछ हर्ज नहीं।

मेरे मन अति भानी—मेरे मन को अच्छी लगी।

थाप्यो पग ... उघारे—सिर नंगा कर उस पर पैर रखा। पूरी तरह से नीचा दिखाए जाने का भाव है।

घनेरे—अनेक।

काशी, प्राग, अयोध्या—भारत के प्रसिद्ध तीर्थ और सांस्कृतिक केन्द्र। प्राग = प्रयाग, तीर्थराज।

सगरी—सब।

घिनाई—घृणा से भर जाय।

मसि—कालिख। कलंकित होने पर भी अभी तक बनी हुई हैं।

पंचनद—पंजाब, जहाँ ऐसी अनेक लड़ाइयाँ लड़ी गई जिनमें भारतवासियों को पराजित होकर दासत्व की शृंखला में बंधना पड़ा।

पानीपत—पंजाब में एक स्थान जहाँ तीन प्रसिद्ध युद्ध हुए—१५२६ (बाबर की विजय), १५५६ (पठान-वंश का अंत), और १७६१ (अहमद शाह द्वारा मराठों की पराजय)। इतने बुरे-बुरे दिन देखने पर भी पानीपत बना हुआ है।

चितौर—महाराणा प्रताप का नगर जहाँ स्वतंत्रता के अनेक असफल युद्ध लड़े गए।

बारानसि—वाराणसि, बनारस। भारत का सांस्कृतिक केन्द्र।

अग्रवन—'वनस्य वृन्दावनस्याग्रम् इति।' आगरे का पूर्वतन नाम।

तीरथराजा—प्रयाग।

सरजू—अयोध्या की पवित्र नदी।

अवधतट—अयोध्या के पास।

तरल तरंगा—प्रवाहपूर्ण लहरें।

रासी—राशि, ढेर।

बोरहु—डुबा दो।

मथुरा—भारत का प्राचीन सांस्कृतिक केन्द्र।

कासी—भारत का प्राचीन सांस्कृतिक केन्द्र।

कुस—महाराज कुश द्वारा बसाई गई कुशावती नगरी।

कन्नौज—प्राचीन सांस्कृतिक और ऐतिहासिक केन्द्र।

अंग—भागलपुर के आसपास का प्रदेश जिसकी राजधानी चंपापुरी थी।

बंग—बंगाल।

करक—टीस।

अस्थान—स्थान।

बिसरे—भूल गए।

भरत भुव—भरत की पृथ्वी, भारतवर्ष।

बिंध्य—विंध्याचल।

लय—नष्ट, एक दूसरे में मिलना।

अपजस—अपयश, कलंक।

हाय पंचनद...भारत भमि कलंका—भारतके प्राचीन प्रसिद्ध महान् नगरों को देखकर भारतेन्दु को अत्यन्त क्षोभ होता है। अपने अस्तित्व द्वारा वे भारत की अधोगति की कहानी सुनाते हैं। भारतेन्दु ऐसे स्थलों का नष्ट हो जाना ही अच्छा समझते हैं। न दिखाई पड़ेंगे, न दुःख होगा।

बल भारे—बल से गर्वीले।

हे—थे।

चंड दापे—प्रचंड दर्प या शक्ति।

चेरे—दास।

कृष्ण-बरन—काले।

बरन—वर्ण।

सुछंद—सुंदर छंद।

धारि स्वाद—स्वाद या रुचि धारण कर।

नारद—पौराणिक परम भक्त जिनकी वीणा का सम्मोहन स्वर प्रसिद्ध है।

तानसेन—अकबर बादशाह के समय का एक प्रसिद्ध गवैया।

हुंकृति—ललकार।

लेत रहे—ग्रहण किए हुए थे।

खेत—रणक्षेत्र।

रन बाजन—रणवाद्य।

संक—भय, डर।

हीरक—हीरा।

काब्य . . . परकास—अर्थात् साहित्यिक विकास। हमारे यहाँ वाल्मीकि को आदि कवि माना जाता है।

जाबाली—कश्यप वंशीय एक ऋषि जो गौतम और महाराज दशरथ के गुरु थे।

जैमिनि—पूर्व मीमांसा के प्रवर्त्तक एक ऋषि जो व्यास जी के ४ मुख्य शिष्यों में से एक थे।

गर्ग—एक प्राचीन ज्योतिर्विद जिनका 'गर्गसंहिता' नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है। उन्होंने शेषजी से विद्या सीखी थी और कृष्ण-बलराम का नामकरण किया था। प्रसिद्ध गार्गी इन्हीं की पुत्री थीं।

पातंजलि—पतंजलि। एक प्रसिद्ध वैयाकरण जिन्होंने ई० पू० द्वितीय शती में पाणिनीय सूत्रों और कात्यायन कृत उनके वार्तिक पर महाभाष्य लिखा।

सुकदेव—महर्षि कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास के पुत्र तथा ब्रह्मज्ञानी और परीक्षित को भागवत की कथा सुनानेवाले।

भुवदेव—पृथ्वी के देवता या महान् पुरुष।

कृष्ण मुनि व्यास—कृष्ण द्वैपायन व्यास।

भारत-गान—जिसे हम महाभारत कहते हैं वह पहले भारत नाम से प्रसिद्ध

था और व्यास उसके कर्ता थे। भारत का वृहदाकार ही महाभारत कहा जाता है।

कपिल—सांख्य-दर्शन के आचार्य और कर्दम ऋषि तथा देवहूती के पुत्र। वे ईश्वर के अवतार माने जाते हैं। गंगासागर संगम पर उनका आश्रम था।

सूत—पुराण-वक्ता हैं।

दुर्वासा—अत्रि ऋषि और अनुसूया के अत्यन्त क्रोधी पुत्र। इन्द्र को शाप दिया, और अंबरीष तथा शकुंतला की कथा में आते हैं।

भृगु—ब्रह्मा के पुत्र तथा अत्यन्त तपस्वी ऋषि। उन्होंने विष्णु की छाती में लात मारकर उन्हें श्रेष्ठ सिद्ध किया।

तृषा—इच्छा, अभिलाषा, लालच।

अवनीस—राजे-महाराजे।

वही बासना...बिलास—अर्थात् वे ही भारतवासी जिनमें प्राचीन संस्कार, ज्ञान, उद्देश्य, और आकांक्षाएँ थीं आज पतितावस्था में हैं।

अतिसूर—अत्यन्त वीर।

बुध—बुद्धिमान, विद्वान्।

मोहनिद्रा—अज्ञान या भ्रम की निद्रा।

जूते...लगवाता है—दरिद्रता या निर्धनता का निशानी।

हाथी पर सवार—राज्यशक्ति और महिमा का प्रतीक।

बनबन की... फिरते हैं—मारे-मारे फिरते हैं, उजड़ गए हैं।

नाम लेवा पानी देवा न रहा—वंश नष्ट हो गया।

पूत—पुत्र।

दिया बालन वाला—वंशज।

वाल्मीकि—रामायण के रचयिता और आदि कवि।

कालिदास—प्रसिद्ध नाटककार जिन्होंने 'मेघदूत', 'अभिज्ञान शाकुंतल', 'रघुवंश' आदि काव्य-ग्रन्थों और नाटकों की रचना की जिनसे भारत का मुख आज भी उज्ज्वल है।

पाणिनि—प्रसिद्ध वैयाकरण जिन्होंने ईसा से प्रायः तीन-चार सौ वर्ष पूर्व 'अष्टाध्यायी' नामक प्रसिद्ध व्याकरण ग्रंथ की रचना की।

बाणभट्ट—प्रसिद्ध 'हर्षचरित' के रचयिता।

चन्द्रगुप्त—मौर्य साम्राज्य के संस्थापक और चाणक्य के शिष्य। उन्होंने ग्रीक आदि विदेशी आक्रमणकारियों को भारत से मार भगाया था।

अशोक—चंद्रगुप्त के पौत्र महान् सम्राट् अशोक प्रियदर्शी (ई० पू० तीसरी शती)। उन्होंने अफगानिस्तान तक अपना साम्राज्य स्थापित किया। उनके शिलालेख प्रसिद्ध हैं।

रूम—रोम।

नल—निषेध देश के चन्द्रवंशी राजा वीरसेन के पुत्र। विदर्भ देश के राजा भीम की कन्या दमयंती के साथ उनका विवाह हुआ था। नल और दमयंती घोर कष्ट सहन करने के लिए प्रसिद्ध हैं।

रंतिदेव—एक प्रसिद्ध पौराणिक दानी राजा जिन्होंने बहुत अधिक यज्ञ किए थे। एक बार सब कुछ दे डालने पर उन्हें ४८ दिनों तक पीने को जल भी न मिला। उनचासवें दिन वे कुछ खाने-पीने का आयोजन कर रहे थे कि क्रम से एक ब्राह्मण, एक शूद्र और कुत्ते को लिए हुए एक अतिथि आ पहुँचे। सब सामान उन्हींके आतिथ्य में समाप्त हो गया; केवल जल बच रहा। उसे पीने के लिए ज्यों ही उन्होंने हाथ उठाया कि एक प्यासा चांडाल आ गया और पीने के लिए जल माँगने लगा। राजा ने वह जल भी दे दिया। अंत में भगवान् ने प्रसन्न होकर उन्हें मोक्ष दिया।

शिवि—राजा उशीनर के पुत्र तथा ययाति के दौहित्र एक राजा जो अपनी दानशीलता के लिए प्रसिद्ध हैं। धर्म रूपी कबूतर की रक्षा के लिए अपने प्राण तक देने को प्रस्तुत हो गए थे।

विद्या का...प्यारे जागो—अँगरेज़ अपने साथ ज्ञान-विज्ञान, वैज्ञानिक आविष्कार, नवीन शासन-प्रणाली, नई कारीगरी और कला लाए थे। भारतवासियों ने उनसे यदि लाभ न उठाया और अंध-परंपराओं और अंध-विश्वासों में ही लिप्त पड़े रहे तो फिर उनके लिए कोई आशा नहीं है। अँगरेज़ी राज्य में जीवन का पुनर्संस्कार करने का बड़ा अच्छा अवसर प्राप्त हुआ था। दे० भारतेन्दु कृत 'हिन्दी-भाषा की उन्नति पर व्याख्यान'।

ज्वर चढ़ा है—विकार-ग्रस्त होने का चिह्न है, भारतीय जीवन स्वस्थ नहीं है।

विक्टोरिया—(१८१९–१९०१)—विलियम चतुर्थ की मृत्यु पर १८३७ में गद्दी पर बैठीं और १८४० में एलबर्ट से विवाह किया। १८५७ में घोषणा-पत्र, १८७६ में भारत-सम्राज्ञी, १८९७ में हीरक-जुबिली।

हे भगवती...पकड़ो—भारतेन्दु महारानी विक्टोरिया से भारत को सहारा देने की विनय करते हैं, अर्थात् वे उसे स्वस्थ बनाने में, उन्नति-पथ की ओर ले जाने में सहायक हों और डूबने से बचावें। भारतेन्दु का विक्टोरिया के प्रति क्या दृष्टिकोण था, इसका पहले उल्लेख हो चुका है।

क्लैब्य—नपुंसकत्व, कायरता, डरपोकपन।

अधीरजपना—धैर्यहीनता।

हे सर्व्वांतर्यामी...निवास हो—यहाँ फिर से भारतोदय की आकांक्षा प्रकट की गई है—उस समय नहीं तो भविष्य में।

ललककर—उमँग कर।

ललककर नहीं मिलते—अर्थात् अभी भारतोदय का समय नहीं आया।

मैं ऐसा हो...बस यह लो—यहाँ भारत भाग्य कटार का छाती में आघात कर गिर जाता है, किन्तु उसकी आकांक्षा यही है 'हे सर्व्वांतर्यामी........मेरा निवास हो।' इससे यही प्रकट होता है कि भारतेन्दु को अपने समय की भारतीय दशा को देखकर घोर निराशा अवश्य हुई थी, किन्तु भविष्य के लिए वे बिल्कुल आशाहीन नहीं थे।